

वर्ष-2 अंक-4 जुलाई-दिसम्बर, 2014

“हमारे भव्य जंगलात उन वन्य जीवों एवं खूबसूरत परिंदों को उद्धृत करते हैं जो हमारे जीवन को उज्ज्वल बनाते हैं। यदि ये भव्य वन्य जीवन हमें खेलने व देखने को ना मिले तो हमारा जीवन नीरस व रंगहीन हो जाएगा। अतः हमें बचे हुए वन्यजीवों एवं जंगलों का संरक्षण करना चाहिए।”

— पं. जवाहरलाल नेहरू



साँ स्केल्ड वाइपर

परिसर के सरीसृप भाग (2)

परिसर के गतांक में हमने सरीसृप समुदाय के लिज़र्डस (छिपकली वर्ग) की चर्चा की थी। इस अंक में हम इसी समुदाय के दूसरे वर्ग स्नेक्स (सर्प वर्ग) की चर्चा करेंगे।

जेएनयू का आवासीय अनुकूलन, प्राकृतिक संपदा व जैव-विविधता पर्यावरण की दृष्टि से अद्वितीय है, और यही कारण है कि राजधानी दिल्ली में पाए जाने वाले लगभग 40 प्रजातियों के विषयुक्त (वेनमस) एवं विषहीन (नॉन-वेनमस) सर्पों की, एक अच्छी आबादी परिसर में रहती है, जिनमें देश का एक सबसे छोटा सर्प 'ब्राह्मणी ब्लाईंड स्नेक' जिसकी अधिकतम लंबाई 3 से 6 इंच होती है, से लगाकर विशालकाय 'इंडियन रॉक पाइथन' या अजगर जो 10 से 14 फुट तक लंबा हो सकता है व IUCN की दुर्लभ प्रजाति वर्ग में सम्मिलित है, भी देखने को मिल जाते हैं। जेएनयू के लिए यह एक गौरवान्वित करने योग्य बात है। अजगर एक कुशल तैराक होता है अतः नमी वाले इलाकों व चैक-डैम के आसपास सर्पियों में धूप सेंकते नज़र आ जाते हैं।



इंडियन रॉक पाइथन

अचरज की बात यह है कि राजधानी में पाए जाने वाली सभी प्रजातियों में से मात्र 4 सर्प विष-युक्त (वेनमस) हैं जिनमें से 3 प्रजातियाँ हमने पिछले 30 वर्षों में परिसर में रिकॉर्ड की हैं। इनमें स्पैक्टैकल्ड कोबरा या नाग, साँ स्केल्ड वाइपर एवं क्रेट शामिल है। विषहीन (नॉन वेनमस) सर्पों में कॉमन रैट स्नेक, वुल्फ स्नेक, सैंड बोआ व चैकर्ड कील बैक आदि है जो अक्सर घरों के आसपास या परिसर के जंगलों में देखने को मिल जाते हैं। इन सभी का मुख्य भोजन चूहे, गिरगिट, छोटे पक्षी व अन्य जीव हैं। निशाचर क्रेट का मुख्य भोजन अधिकतर अन्य प्रजातियों के सर्प होते हैं। 'ब्राह्मणी ब्लाईंड स्नेक' जो कि नमी वाली ज़मीन के नीचे रहता है, का मुख्य भोजन चींटियों व दीमकों के अंडे या लार्वा होते हैं।



स्पैक्टैकल्ड कोबरा

सर्प भी एक शीत-रक्तीय जीव है अतः शीत ऋतु में शिथिल हो जाते हैं एवं शीत निष्क्रियता में चले जाते हैं और अनुकूल मौसम 'मानसून' व गर्मियों के आगमन पर पुनः सक्रिय हो जाते हैं। इन सभी सर्पों को अक्सर अज्ञानतावश मानवीय क्रोध एवं घृणा का शिकार होना पड़ता है और इसी कारण ये हाशिये पर आ गए हैं। जेएनयू समुदाय इन सर्पों के संरक्षण में एक अग्रिम भूमिका निभा रहा है और पिछले कई वर्षों से परिसर में 'स्नेक अवेरनेस प्रोग्राम' आयोजित करता है जिसमें सर्पों के बारे में जानकारी दी जाती है। और यही कारण है कि पिछले चार दशकों में परिसर में सर्प को मारने या सर्प द्वारा किसी व्यक्ति को डसने की कोई भी घटना नहीं हुई जो एक सराहनीय प्रयास है। अतः ये प्राकृतिक पैस्ट-कंट्रोलर परिसर में सुरक्षित है।



ब्राह्मणी ब्लाईंड स्नेक

—डॉ. सूर्य प्रकाश

I ā knd&My
v/; {k
प्रो. गोबिन्द प्रसाद

I nL;
प्रो. सौमित्र मुखर्जी
डॉ. संदीप चटर्जी
डॉ. देवेन्द्र कुमार चौबे
डॉ. डी.के. लोबियाल
डॉ. मणीन्द्र नाथ ठाकुर
श्रीमती पूनम एस. कुदेसिया

I ā knu I g; ks
भावना बेदी

fo'k'k I g; ks
धीरेन्द्र कुमार

i cāk I ā knu I g; ks
डॉ. सूर्य प्रकाश

dšyhtkQh rFkk vkj .k fp=
डॉ. गोबिन्द प्रसाद

Qk/ks
वकील अहमद

Vkbi I šVax
शिव प्रताप यादव

I ā dZ
संपादक
जेएनयू परिसर
हिंदी एकक
301, प्रशासनिक भवन
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

दूरभाष : + 91 11 26704023, 26704283
ई-मेल : jnuparisar@mail.jnu.ac.in &
hindiunit@mail.jnu.ac.in
संपादन/संचालन : अवैतनिक

जेएनयू
परिसर

वर्ष-2 अंक-4
जुलाई-दिसम्बर 2014

I ā knd&My

जेएनयू परिसर

वर्ष : 2, अंक : 4, जुलाई-दिसम्बर 2014

I ā kndh; @2

ckrphr@3

कवि केदारनाथ सिंह से गोबिन्द प्रसाद की बातचीत
foKku i fjn' ; @13

प्रो. पवन माथुर

yš[kd dh nfu; k@16

प्रो. देवेन्द्र चौबे, राजीव रंजन, डॉ. बिपुल कुमार

0; k[; ku@26

प्रो. वाय.एस. अलोन

dk0; I 'tu@30

प्रो. गंगाप्रसाद विमल

yš[k@32

डॉ. सत्येन्द्र कुमार, धीरेन्द्र कुमार

fpru@36

नीरज कुमार श्रीवास्तव एवं बलवन्त सिंह

ओमप्रकाश सैन

vupkn fpru@40

डॉ. रमण सिन्हा, शिवम् शर्मा

fgnh I ā kj@43

सुमेर सिंह

dfork, @45

डॉ. संदीप चटर्जी, नवीन सिंह, दीपक शर्मा, गंगा सिंह

शेखावत, कुसुम लता शर्मा (तमन्ना), शुभम शेखर

xaxk <kck@49

दिव्यानन्द

dgkuh@52

डॉ. देवेन्द्र चौबे, गंगा सहाय मीणा, ज्योति

xfrfof/k; k@58

डॉ. देवशंकर नवीन, प्रियंका शर्मा, अमलेश कुमार

I ã kn dh;

tʃu;wifl j का यह चौथा अंक आपके हाथों में है। इस अंक के साथ 'देर आयद दुरुस्त आयद' वाली कहावत लागू होती है। मित्रो, जेएनयू परिसर विश्वविद्यालय समुदाय की वैचारिक अभिव्यक्ति की परिचायक है। इसमें जेएनयू के छात्र, अध्यापक, अधिकारी, कर्मचारी वर्ग की लेखनी द्वारा प्रवाहित विचार साझा करने व विश्वविद्यालय की गतिविधियों को समाहित करने का प्रयास किया जाता है।

भाषा संस्कृति का कोष और वाहक होती है। यह केवल विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम नहीं, अपितु उनको मूर्त रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जब हम अपनी भाषा में अपने विचारों को व्यक्त करते हैं तो ही सर्जना में मौलिकता लक्षित होती है। यही मौलिकता हमारे कामकाज में भी परिलक्षित होती है।

प्रस्तुत अंक में हिंदी के विख्यात कवि केदारनाथ सिंह से प्रो. गोबिन्द प्रसाद का साक्षात्कार विशेष महत्व का है। उल्लेखनीय है कि डॉ. सिंह को इस वर्ष (2014) भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। भारतीय साहित्य में उनका उत्कृष्ट योगदान रहा है। प्रो. पवन माथुर ने विज्ञान परिदृश्य के अंतर्गत 'भाषा, सृजन और विज्ञान' शीर्षक से भाषा और विज्ञान का सामंजस्य परिलक्षित किया है। इस अंक में विशेष आकर्षण प्रो. गंगाप्रसाद विमल की कविताएं हैं।

अनुवाद के अंतर्गत इस अंक में वाल्तेयर की फ्रेंच कहानियों को हिंदी अनुवाद के रूप में प्रस्तुत किया गया है। डॉ. सत्येन्द्र कुमार, प्रलेखन अधिकारी ने भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि और महिलाओं की भूमिका पर महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किए हैं। 'भारतीय संस्कृति की आत्मा व विश्व की सारगर्भित भाषा : संस्कृत' में समृद्ध भाषा संस्कृत के महत्व को दर्शाया गया है। विश्वविद्यालय के कुलसचिव ने अपनी कविताओं की छटा परिलक्षित की है। प्रो. देबेन्द्र चौबे की कहानी '1764' तथा डॉ. गंगा सहाय मीणा की कहानी 'पूस की एक और रात' अपने ढंग की अलग कहानियाँ हैं।

हमारी इस पत्रिका का उद्देश्य न केवल वैचारिक अभिव्यक्ति है, अपितु सरकारी कामकाज में राजभाषा हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देना भी है। हम सुधी पाठकों से वैचारिक साझा करने के लिए आमंत्रित करते हैं। ताकि पत्रिका के आगामी अंकों में उन विचारों को उचित स्थान दिया जा सके। आपके रचनात्मक लेखन व अनुभवों से हमें प्रेरणा मिलती रहेगी।

आशा है इस अंक को भी पाठकगण रुचिकर और उपयोगी पाएँगे। प्रबुद्ध पाठकों की प्रतिक्रियाएँ व सहयोग पत्रिका के अगले अंक को और अधिक सार्थक व उपयोगी बनाने में हमारी सहायता करेगा – इसी आश्वस्ति बोध के साथ।

çks xkfcUn i ã kn

dfo l s l k{kkRdkj *

केदारनाथ सिंह

(केदारनाथ सिंह से गोबिन्द प्रसाद की बातचीत)

हिन्दी के वरिष्ठ कवि प्रो. केदारनाथ सिंह आज हमारे साथ हैं। सप्तकीय कवियों में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। पिछले पचास वर्षों से वे काव्य सृजन में रत हैं और हमारे समय के नये कवियों पर भी उनके काव्य व्यक्तित्व का प्रभाव दिखाई पड़ता है। तो मैं चाहता हूँ कि हिन्दी कविता पर और उससे भी पहले केदार जी की काव्य-यात्रा के बारे में हम जानें। तो इसी संदर्भ में मैं सबसे पहले यह जानना चाहता हूँ कि आखिर कविता को आपने क्यों चुना होगा? कविता की तरफ आप कैसे चले गए?

dnkjukfk fl g %गोबिन्द जी, पहली बात तो ये कि जब मैं कवि होता हूँ और कविता पर बात करता हूँ ... एकेडेमिक दुनिया से बाहर, तो मैं प्रोफ़ेसर नहीं होता हूँ।

xkfcUn i l kn %जी !

dnkjukfk fl g %इसलिए मैं प्रोफ़ेसर केदारनाथ सिंह नहीं बोल रहा हूँ, केदारनाथ सिंह बोल रहा हूँ। ये बड़ा फ़र्क है मेरे लिए, एकेडेमिक दुनिया में रहते हुए एक रचनाकार बने रहना। ये कितना श्रमसाध्य है मैं जानता हूँ। क्योंकि पहली बात तो यह कि आप जब पठन-पाठन की दुनिया से जुड़ते हैं, जो साहित्य की ही दुनिया है, तो एक खास तरह की कंडीशनिंग होती है। कुछ रचनाकारों को आप पढ़ाते हैं, या पढ़ाना पड़ता है। चाहे न चाहे पढ़ाना पड़ता है। कुछ बातें वो करनी पड़ती हैं, समझानी पड़ती हैं जो अदरवाइज़ शायद आप न समझाते। तो इसमें होता क्या है कि एक तरह का ये, एक आपके पूरे मनोजगत पर प्रभाव डालता है, फिर आपका एक भाव-लोग बनता है जिससे बाहर निकलने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। कुछ दुनिया में बड़े कवि हुए हैं जो एकेडेमिक दुनिया से आए हैं। मैं बड़ा कवि होने का दावा नहीं करता। एक सामान्य हिन्दी का जो रंग-ढंग है उसके भीतर से निकलने वाला कवि हूँ, और मैंने कोशिश यह की है कि जो यह कंडीशनिंग है, एकेडेमिक दुनिया की, वह मुझे बाधित न करे। तो मैंने उसे तोड़ने की कोशिश की है। और अगर एक शब्द में मुझसे पूछा जाए तो मेरी यदि कोई सफलता है तो सूर, तुलसी और केशव और फलां-ढमाका। कुछ अच्छे लोग उसमें भी थे। मैं जब भी निराला को पढ़ाता था मुझे सुख मिलता था। प्रसाद को पढ़ाने से भी सुख मिलता था, पर निराला में मुझे ज्यादा मिलता था। और यही मुझे बार-बार लगता था कि इस परंपरा में जिनको मैं पढ़ा रहा हूँ ग़ालिब क्यों नहीं हैं,

मीर क्यों नहीं हैं, नज़ीर क्यों नहीं हैं, वगैरह-वगैरह। ये परम्परा भी लगातार, मैं बिल्कुल अपने तहे-दिल से मानता हूँ कि ये हमारे कवि हैं, हमारी परम्परा के कवि हैं। और हिन्दी के कवियों को और आधुनिक कवियों को पढ़ाते हुए मुझे लगातार लगता है कि मैं घाटे में हूँ।

xkfcUn i l kn %आपने अभी जो बातें कहीं, उससे एक साथ कई तों मन में उभर रही हैं। लेकिन उस क्रम में मैं सबसे पहले क्योंकि आपने जिस तरह से कंडीशनिंग की बात की तो मुझे लगा कि कहीं आप मानते हैं कि अध्यापक होने के नाते, और अध्यापक होने के साथ-साथ क्योंकि आप कवि भी हैं, तो यह जो कवि होना है उसमें कहीं ना कहीं एक बाध्यता महसूस करते हैं। एक अवरोध की स्थिति जैसा मतलब ... क्योंकि आपने एक शब्द प्रयोग किया कि जैसे पढ़ाना पड़ता है तो शायद ऐसा लगता है जैसे ...

dnkjukfk fl g %मुझे याद आया गोबिन्द जी। बहुत पहले मैंने कहीं पढ़ा था कि एक कवि थे, कोई लाइक करे ना करे, लेकिन बड़े कवि तो थे ही टी.एस. इलियट। तो उनको पोएट्री चेयर का, जहाँ तक कि कैम्ब्रिज में या ऑक्सफोर्ड में कहाँ ऑफ़र किया था, भूल रहा हूँ यह प्रस्ताव विश्वविद्यालय की तरफ से आया था और उन्होंने अस्वीकार कर दिया था, यह कहते हुए कि वहाँ मुझे उन कवियों पर बात करनी पड़ेगी, उन रचनाकारों पर बात करनी पड़ेगी, जिन्हें मैं पसंद नहीं करता। तो अपनी पसंद के रचनाकारों पर बात करने के लिए मैं वहाँ आज़ार नहीं होऊँगा इसलिए मैं फ़ॉस्ड कोई, किसी रचनाकार पर बलात बात करने के लिए मुझसे कहा जाए, क्योंकि कोर्स स्ट्रक्चर इस तरह का होता है तो मैं उसे स्वीकार नहीं करूँगा।

हालाँकि मैं यह भी जानता हूँ कि यह जो 'पोएट्री चेयर' उन्हें ऑफ़र की गई थी, उसमें ऐसी कोई बाध्यता थी नहीं। उनको कुछ-कुछ भाषण देने थे वहाँ तकरीरें करनी थीं और उसमें वो अपनी तरह से बात कर सकते थे। बड़े साहित्यकार थे, बड़े आलोचक भी थे। पर उन्होंने ये प्वाइन्ट रेज़ किया था उसमें कि ये समस्या है एकेडेमिक दुनिया की जो उनसे अपेक्षा की जाती थी। मान लीजिए, उन्होंने कहा तो नहीं पर मैं जोड़ रहा हूँ अगर मुझसे कहा जाता या कोई प्रश्न करता कि मिल्टन पर आपने ये लिखा है तो क्यों लिखा है? मिल्टन उन्हें पसंद नहीं था, लिख चुके हैं वे। लेकिन उन्होंने

*साक्षात्कारदाता भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार (वर्ष 2014) से सम्मानित हैं तथा भारतीय भाषा केन्द्र में प्रोफ़ेसर एमेरिटस हैं।

कहा कि यदि मैं अपनी बात पूरे बालाघात के साथ कहूँगा छात्रों के सामने कि मैं इसलिए यही मानूँ कि मैं सही हूँ और जो छात्र लिखेगा तो हो सकता है कि फेल हो जाए वह।

और यह हम सब जानते हैं कि इस एकेडमिक दुनिया के साथ परीक्षा प्रणाली जुड़ी हुई है।

xkfcUn i d kn % नहीं। पसंद ना होना तो एक बात है। लेकिन पसंद ना होने के पीछे टी.एस. इलियट तो कारण गिनायेंगे, या उनके जो अपने तर्क होंगे तो उसमें अपनी कोई न कोई बात ज़रूर होगी जिससे वे साबित करेंगे कि मैं मिल्टन को क्यों नहीं पसंद करता। मेरा मतलब ये है कि सारी चीजें तो एक आदमी के पसंद के भीतर नहीं समा सकती हैं। लेकिन बावजूद इसके ...

dnkjukFk fl g % पर आपको पसंद करना पड़ेगा। अगर आप केशव को पढ़ा रहे हैं, मुझे केशव कवि के रूप में पसंद नहीं है। लेकिन अगर मैं छात्र को केशव को पढ़ा रहा हूँ और कहूँ कि केशव खराब कवि थे तो जाहिर है कि वे फेल हो जायेंगे।

xkfcUn i d kn % लेकिन, यदि केशवदास की कुछ कमज़ोरियाँ हैं, तो मैं समझता हूँ कि उन्हें सामने लाना चाहिए। विद्यार्थियों से उन्हें शेर करना चाहिए। ये एक अलग मजबूरी है कि कोर्स में केशव हैं, लेकिन बावजूद इसके ...

dnkjukFk fl g % नहीं, आप जस्टीफाई कर रहे हैं उस काम को। मैं आपके पक्ष में नहीं हूँ। मैं आपका समर्थन नहीं करूँगा। ये मजबूरियाँ हैं एक अध्यापक की, जो करनी पड़ती हैं।

xkfcUn i d kn % हाँ। विवशता तो है।

dnkjukFk fl g % मैं ...। आपको एक घरे में काम करना है।

xkfcUn i d kn % मैं ये तो, इससे तो सहमत हो सकता हूँ क्योंकि आप अमुक कवि को पसंद नहीं करते तो जाहिर है कि उसको पढ़ाने में भी आपकी शायद वैसी दिलचस्पी न हो।

dnkjukFk fl g % बहरहाल आपकी बातों को सम्मान देते हुए मैं कहूँगा कि ये कंडीशनिंग होती है।

xkfcUn i d kn % हाँ, बिल्कुल। सहमत हूँ।

dnkjukFk fl g % और उसमें फिर आप छात्रों के साथ रिएक्ट करते हैं, छात्र फ्रेश होते हैं। ताज़गी भरी होती है उनमें। लेकिन फिर उस दुनिया में तो इमेच्योर भी होते हैं, कच्चे भी होते हैं। तो वहाँ उनसे बात करके, उनको पढ़ाते हुए हमारी जो धारणा बनती है वो कई बार, उसकी अपनी सीमाएँ भी होती हैं। उस दुनिया के बाहर भी एक बड़ी दुनिया है।

रचनाकार की दुनिया क्लास रूम की दुनिया नहीं है, उससे बाहर की दुनिया है।

xkfcUn i d kn % जी।

dnkjukFk fl g % तो मैं जो बता रहा था कि मैं करीब-करीब 30-32 साल पढ़ाता रहा हूँ, और ये पढ़ाते हुए लगातार महसूस करता रहा हूँ कि एक अध्यापक को एक अलग ढंग का संघर्ष करना पड़ता है, और वो जिस दुनिया में जिस तरह का काम कर रहा है, क्योंकि वो परीक्षा भी लेता है, फेल-पास भी करता है। और जिन आधारों पर हम करते हैं, उसमें कई बार अपने को संतोष नहीं मिलता है। मैं जानता हूँ तो ये सारी स्थितियाँ जो हैं, इन्हीं को मैं कंडीशनिंग कह रहा था, किसी भी तरह की कंडीशनिंग साहित्य के लिए हितकर नहीं है। मेरा मतलब ये है।

xkfcUn i d kn % जी, जी। मैं तो यह चाहता था कि जो पहला आपका संकलन ...।

dnkjukFk fl g % मैंने जब ये कहा तो इसलिए कहा जब आपने प्रोफेसर कहा। न कहा होता तो मैं न कहता।

xkfcUn i d kn % बहरहाल। मैंने शायद सम्मान की दृष्टि से ऐसा कहा क्योंकि सीधे नाम लेना मेरे लिए संभव नहीं हो रहा था इसलिए मैंने कहा। बहरहाल लेकिन मैं बात तो यहाँ से शुरू करना चाहता था कि 1960 में 'अभी बिल्कुल अभी' नाम से आपका जो संकलन आया तो उससे पहले जो 'तीसरा सप्तक' में आपकी कविताएँ आ चुकी थीं ...

dnkjukFk fl g % दोनों एक ही वर्ष में आईं।

xkfcUn i d kn % लगभग, मेरा खयाल है वो, कुछ पहले शायद, मेरे खयाल से 1959 ...।

dnkjukFk fl g % नहीं, दो-चार महीने का फर्क, लेकिन वर्ष एक ही था। जो कविताएँ 'अभी बिल्कुल अभी' में हैं उसकी कुछ कविताएँ उसमें हैं, कुछ नहीं भी हैं।

xkfcUn i d kn % तो मेरे मन में सवाल जो था वो ये था कि उन कविताओं को देखकर एकाएक यह महसूस नहीं होता कि वो कच्ची कविताएँ हैं। उनका एक रंग है अपना और बहुत परिपक्वता लिए हुए हैं। तो ये मेरे लिए आश्चर्य की बात है कि पहले पहल जो कवि सामने आता है वो भी सप्तक परम्परा में वो इतनी मज़बूती के साथ ...।

dnkjukFk fl g % मैं एक बात कहूँ। 'तीसरा सप्तक' तैयार करते समय भी और ये संग्रह जो हैं पहला ...।

xkfcUn i d kn % 'अभी बिल्कुल अभी' ...।

dnkjukFk fl g % उसमें बहुत कम कविताएँ चुनीं मैंने। उन सारी कविताओं में से जो मेरे सामने थीं। जो मेरी समझ थी उस समय वो बहुत कच्ची थीं यही कहूँगा तो उसके

तहत वो चयन मैंने तैयार किया था। जो तैयार किया था वो सारा नहीं छपा। मेरे एक मित्र थे, और कहानीकार थे, मार्कण्डेय। तो मार्कण्डेय ने एक प्रकाशन शुरू किया था। क्या नाम था उसका ? देखिए नाम भी भूल रहा हूँ। तो उस प्रकाशन के अन्तर्गत उसे प्रकाशित किया, बिना हानि-लाभ के, मार्कण्डेय ने।

xkfcUn i d kn % 'तीसरा सप्तक से पहले'।

dnjukFk fl g % उसी के आस-पास।

xkfcUn i d kn % उसी के आस-पास

dnjukFk fl g % 'तीसरा सप्तक' उसके बाद आया है। ये तो उन्होंने उसे छापा 'नया प्रकाशन' था ... शायद यही नाम था। मेरी एक किताब छापी उन्होंने। स्वयं माँगकर छापी। मैं उसके लिए आग्रहशील नहीं था तो कविताओं का वो चयन बना था वो बड़ा था। उसमें वही कविताएँ उतनी नहीं थीं जितनी आज हैं, कुछ और अधिक थीं, तो वो उनकी सीमा थी कि मुझे इतना ही छापना है। कुछ अर्थ पक्ष भी होगा। क्योंकि अपनी जेब के पैसे से निकाल रहे थे वो। तो वो सारी कविताएँ छॉट दीं। उन्होंने कहा कि मैं निकाल रहा हूँ। मेरे लिए तो यह सौभाग्य की बात थी। कविता कौन छापता था। आज भी कविता कौन छापता है ? वह मेरे लिए बड़ी बात थी। मार्कण्डेय का मैं लगातार कृतज्ञ हूँ। तो उसका जो स्वरूप बनता वह नहीं बना। वही कविताएँ रह गईं, जो उन्होंने रहने दीं। बीच की कहानी मैं छोड़ रहा हूँ। बाद में मैं बनारस से बाहर चला गया, अपने जीवन-संघर्ष में जुट गया। काफी लंबे समय तक वह पत्नी की बीमारी से परेशान रहा। यह सब कुछ हुआ। उसमें नए संग्रह का निकलना टलता रहा।

मेरी समस्या यह भी कि जो कविताएँ 'अभी की बिल्कुल अभी' से छॉट दी गई थीं लगता था मुझे कि वो पुरानी पड़ रही हैं और नई कविताएँ इतनी नहीं थीं कि नया संग्रह निकाला जा सके। इस तरह नया संग्रह टलता गया। उसके बाद जैसा कि मैंने आपसे निवेदन किया कि मेरी पत्नी की बीमारी ... उसको लेकर पाँच-सात साल तक मैं इस स्थिति में नहीं था कि कविता के बारे में सोच भी सकूँ। और वो भयानक रोग था। कैंसर की पेशेंट थीं वो। तो उनको लेकर यहाँ भागना, वहाँ भागना, इलाज करना और दुर्भाग्य से उनको इलाज के बाद पाँच-छह साल की उम्र मिली ... वो फिर रही नहीं ... गुजर गईं। तो उसमें संग्रह का आना टलता रहा मेरा। वो जाके 1980 में छपा है। 'ज़मीन पक रही है'। 'ज़मीन पक रही है' में भी वो कविताएँ जो तत्काल बनी थीं वहीं मैंने दीं। जो छूट गई थीं वो मैंने शामिल नहीं कीं। तो ये ऐसे बना।

xkfcUn i d kn % लेकिन मेरे खयाल से हिन्दी कविता के जो पाठक हैं उनके सामने हमेशा एक बड़ा सवाल

यह रहा है कि जो कविताएँ आपकी सप्तक में आईं और उनके माध्यम से जो एक तस्वीर आपकी बनती है जिसके एक लिरिसिस्ट पोएट के रूप में आप उभरकर आते हैं और बाद में 'ज़मीन पक रही है' में कविताओं का जो फ्लेवर है मेरे खयाल से टेकनीक की दृष्टि से भी, जो काव्य-निर्मिति है आपकी वो ऐसा लगता है कि ये वो कवि ही नहीं हैं। उसने अपने आपको बिल्कुल बदल लिया है। तो ये एक सामर्थ्य की भी बात है, एक कवि के भीतर बहुत सारे रंग होते हैं, और एक काव्य-विकास की तरह भी इसे देखा जा सकता है। तो बहुत सारे सवाल इस बात से जुड़े हैं। ये जो बीस साल का वक्फ़ा है 60 से 80 के दरमियान, यह अपने आप में बड़ा अहम और एक प्रस्थान की तरह है।

dnjukFk fl g % बड़ा वक्फ़ा है ये और आपने सही कहा कि वो एक अलग प्रस्थान हैं 'ज़मीन पक रही है' की कविताओं में तकनीक के लिहाज से भी, टेम्पर के लिहाज से भी, भाव-बोध के लिहाज से भी बहुत बड़ा फ़र्क़ है। पहले संग्रह से। लगभग न समझ में आने वाला।

xkfcUn i d kn % हाँ, बिल्कुल।

dnjukFk fl g % लेकिन मैं कहूँगा मेरे भीतर एक लिरिक पोएट था, एक बहुत सूक्ष्म धरातल पर, अपने तरीके से वह वहाँ भी मौजूद है।

xkfcUn i d kn % वह वहाँ है, उसमें है बिल्कुल...।

dnjukFk fl g % और थोड़ा-बहुत वह आज भी मेरे भीतर ज़िंदा है। भले ही वह भेष बदल-बदलकर आए। वो जो मूल तत्व है वह भेष बदलकर मेरे यहाँ आता रहा है, 'ज़मीन पक रही है' के बारे में एक बात मैं कहूँगा कि मैं उसके प्रकाशन को लेकर आज भी बहुत चकित होता हूँ कि वो एकदम से इतना ज़्यादा कई कारणों से और कई न समझ में आने वाले कारणों से चर्चित हुआ और उसका दूर तक प्रभाव पड़ा।

अभी किसी ने मुझे फ़ोन पर कहा कि अभी भी आपका प्रिय संग्रह वही है, हिन्दी के जीवित कवियों में एक कवि ने जिनका नाम लेना मैं ज़रूरी नहीं समझता कहा कि जब यह किताब आई थी तो मैं रात-रात भर लिए-लिए फिरता था।

तो वह कुछ अलग था कि एक कविता की धारा थी नई कविता की नए कवियों की। नई कविता बासी सी पड़ चुकी थी, और एक धारा थी जो प्रगतिशील कवि काम कर रहे थे, उनकी भी एक धारा थी। इनके बीच की कोई धारा नहीं थी। तो शायद किसी हद तक ... 'ज़मीन पक रही है' संग्रह बीच का एक ...

xkfcUn i d kn % दोनों धाराओं के बीच में एक पुल बनाती हुई कविताएँ हैं।

dnkjukFk fl g %हाँ, रास्ता बनाने का एक प्रयास जैसा कुछ था। बना कि नहीं बना मैं नहीं कह सकता। तो वह था। मैं तो जैसे असंतुष्ट था। और प्रगतिशील कविता का उस समय जो ढाँचा था उससे भी असंतुष्ट था। प्रगतिशील कविता ने छलॉग लगाई है 80 में यानी बाद के समय में। इमरजेन्सी के बाद। इमरजेन्सी के बाद या उसके आस-पास।

xkfcUn i l kn %नई कविता से असंतुष्टि का कोई खास कारण या उसकी कोई वैचारिक वजह ...

dnkjukFk fl g %नई कविता एक बहुत ही सीमित मध्यवर्ग के बहुत छोटे हिस्से की कविता थी, जो बहुत रोमानी किस्म के इलाहाबाद का एक ग्रुप था उन लोगों के दिमाग की उपज थी। वो एक लहर उठाने की कोशिश जरूर कर रहे थे, लेकिन उसमें सार्थक प्रयास उनका बना नहीं। वे खुद महसूस कर रहे थे।

विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के बाद का विकास देखें तो लगता है कि इन लोगों ने नई कविता की रूढ़ियों को समझ लिया था, उसको बदलने की कोशिश कर रहे थे। मलयज ने कई बार इस पर टिप्पणियाँ की हैं। वहीं शमशेर थे, उसी इलाहाबाद शहर में शमशेर थी। और शमशेर ने तो कभी अपना ढंग-ढर्रा बदला ही नहीं। शमशेर की बहुत बड़ी खूबी है कि कोई आदमी इतना जिद्दी ढंग से सिर्फ शमशेर बना रहे। वो कुछ और न बनने दे अपने को। मैं उसे बहुत बड़ी चुनौती भरी स्थिति मानता हूँ। जैसे शपथ हैं ? शमशेर। और काफ़ी हद तक सफल रहे। हर बड़े कवि की विफलताएँ भी होती हैं। उनकी भी बहुत हैं, लेकिन बड़े थे, इसको लेकर कोई दो-मत नहीं हैं। कम से कम मेरे मन में नहीं है, तो वो भी थे। वो नई कविता का विलोम थे। इलाहाबाद में शमशेर नई कविता का विलोम थे। नई कविता जिन दिनों लिखी जा रही थी उन दिनों निराला भी जीवित थे, पंत तो थे ही।

xkfcUn i l kn %लेकिन, नई कविता से उन्होंने कभी मेरे खयाल से बहुत स्पष्ट रूप से विरोध तो नहीं किया।

dnkjukFk fl g %विरोध नहीं विलोम कह रहा हूँ। विरोध नहीं किया उन्होंने, लेकिन वो शमशेर ही बने रहे। शमशेर का अपना ढंग यह था कि शमशेर अपने स्वभाव में और एक कमजोरी की हद तक इतने लिबरल कभी-कभी हो जाते थे कि वो मुझे याद है कि वो एक कवि सम्मेलनी कवि की भी तारीफ़ कर रहे थे मुझसे। नीरज की कविताओं की कई बार तारीफ़ की थी उन्होंने। ये सब था उनमें। बहरहाल, जहाँ शमशेर अपनी कविता की बात आती थी, वहाँ सिर्फ़ वही होते थे जो कि वो थे। कोई समझौता नहीं शमशेर ने अपने काव्य-गुरु के साथ और अपनी अन्य प्रणाली के साथ कभी

कोई समझौता नहीं किया। इसीलिए वे टिके रहे। टिके हैं, टिके रहेंगे।

xkfcUn i l kn %टिके रहेंगे।

dnkjukFk fl g %तो नई कविता का एक विकल्प वो भी थे। पर उन दिनों वो बहुत पापुलर नहीं थे। ये आश्चर्य की बात है, और हमको इसे भूलना नहीं चाहिए कि नई कविता के कवि नहीं, सबसे पहले महत्वपूर्ण लेख शमशेर पर लिखा विजयदेव नारायण साही ने। 'शमशेर के काव्य की अनुभूति की बनावट' ये पहला लेख था शमशेर पर जो बहुत समझदारी के साथ लिखा गया था। और उनके महत्व को उन्होंने रेखांकित किया और बहुत बड़े सलीके से, पूरा अध्ययन करते हुए उनकी कविता को, उनके सौंदर्य को बताते हुए।

xkfcUn i l kn %जी।

dnkjukFk fl g %वो एक बड़ा लेखक था जो शमशेर की प्लेसिंग करता था पूरे सेट-अप में इतिहास में। मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि विजयदेव नारायण साही का वह लेख नई कविता की सीमाओं पर एक बहुत बड़ी टिप्पणी थी। सख्त टिप्पणी थी। क्योंकि उन्होंने नई कविता के भीतर, कोई नहीं मिला जिसको उस तरह से वो प्लेस करें, पूरे परिदृश्य में और बड़े कवि के रूप में स्वीकार करें। साही प्रबुद्ध व्यक्ति थे, राजनीतिज्ञ थे। वो सोशलिस्ट थे ? लोहियाइट्स थे। तो उसमें एक अलग उनका आयाम था। वो मजदूरों के बीच काम करते थे। साही भदोही के बुनकर मजदूरों के बीच काम करते थे। एम.पी. का चुनाव भी लड़ा था, हार गए। ये सब था। इसलिए साही का एक सार्वजनिक जीवन भी था, और इसके साथ-साथ नए अनुभव भी थे। इन नए अनुभवों ने शायद बाध्य किया उनको कि वो नई कविता के घेरे से बाहर आकर नई कविता के विलोम के रूप में जो कवि खड़ा होता है वहीं, इलाहाबाद में उस समय मौजूद था उस पर लिखें और उसके महत्व को स्वीकार करें। शमशेर का यह महत्व स्वीकार किया जाना नई कविता के एक व्याख्याकार के द्वारा इसे मैं हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक बड़ी घटना मानता हूँ और इसे नई कविता के स्वरूप पर बहुत सख्त टिप्पणी मानता हूँ। तो लीजिए। ये बड़ा प्वाइंट हुआ।

xkfcUn i l kn %हाँ, ये बहुत बड़ा प्वाइंट है और

... लेकिन ये, बहुत बड़ी बात आपने कही, लेकिन इसके साथ एक सवाल कि आपकी बात से मेरे मन में अचानक से उपजा है। क्योंकि आपने अपने को बताते हुए कहा कि ये जो जब मैं बात कर रहा था कि 'जमीन पक रही है' और 'अभी बिल्कुल अभी' के बीच का एक लम्बा जो वक्फ़ा है, अंतराल है और उसमें आप बिल्कुल एक नये कवि की तरह से, एक नये मुहावरे के साथ, आते हैं तो और उसमें आपने जोड़ा है कि ये

जो भेष बदलने की अनिवार्यता या कोई विवशता कवि के भीतर रहती होगी, लेकिन एक ही तरफ आपने अभी कहा कि जो शमशेर हैं वो अपनी ही मुहावरे में आखिर तक अडिग रहे, अपनी ही बातों पर अडिग रहे, अपनी जो उनकी अभिरुचि है या जो उनका अपना सौन्दर्य है ... रहते यानी कहने का मतलब ये कि उन्हें कोई भेष बदलने की शायद ज़रूरत नहीं पड़ती है। तो आखिर ये क्या बीच में है ...

dnkjukFk fl g % सवाल ये है ... अच्छा सवाल पूछा आपने। शमशेर एक प्रौढ़ कवि बन चुके थे। मैं लेकिन तब भी नौसिखिया था, सीखने की कोशिश कर रहा था, मैं हर किसी से सीखता था, त्रिलोचन तो थे ही बनारस में और उनसे बहुत सीखता था मैं। हालाँकि त्रिलोचन से जितना सीखना चाहिए था मुझे, उतना सीख नहीं पाया। उनसे और बेहतर सीखा जा सकता था। शमशेर से सीखना कठिन था, और मैं शमशेर को कई बार पकड़ नहीं पाता था, अच्छे लगते थे वो, बहुत अच्छे लगते थे। लेकिन एक बीच में जोड़ना चाहता हूँ कि वो जो वक्फ़ा जिसकी बात कर रहे हैं, बीच वाला ...

xkfcUn i d kn % जी हाँ वो ...।

dnkjukFk fl g % उसमें जो कविताएँ लिखी गई थीं और जो 'अभी बिल्कुल अभी' में नहीं आईं और 'ज़मीन पक रही है' में आतीं तो बासी पड़ती हुई लग रही थीं। तो उसमें उनको नहीं दिया मैंने, रोक लिया। मैं कोशिश में हूँ कि वो बीच में की कविताएँ भी ...

xkfcUn i d kn % आना चाहिए उन्हें।

dnkjukFk fl g % छोटे-मोटे संग्रह के रूप में आ जाएँ। पर दुर्भाग्य से कुछ कविताएँ खो गई थीं और मुझे उसकी कॉपी कहीं आधी-अधूरी भी ... कहीं पूरी मिल गई हैं। तो मैं देने जा रहा हूँ। वो तीस-चालीस कविताएँ हैं। तो उनका एक संग्रह आएगा, ये हो सकता है कि साल में ही आ जाएँ या ...

xkfcUn i d kn % तो वो कविताएँ बासी पड़ गई हैं, आपको ऐसा क्यों लगने लगा।

और वो उनकी बनावट ... नहीं हो सकता है कि वो जो बाद में आपने कविताएँ लिखीं आपको लगा होगा कि ये उससे आगे की या ...

dnkjukFk fl g % ये समझ का फेर भी हो सकता है। अभी भी उन कविताओं को देख रहा था तो मुझे लगा .

xkfcUn i d kn % मुझे लगता है कि पाठक समाज तो उन कविताओं को आज भी बहुत चाहता है और क्योंकि कुछ लोगों ने शायद वो कविताएँ पढ़ी हैं।

dnkjukFk fl g % हो सकता है। हो सकता है। अभी मैंने कहा कि एक मेरी कविता थी जो मैं भी भूल गया

हूँ और हिन्दी क्यों याद रखेगी ? हिन्दी को याद रखने की आदत नहीं है। 'शाम एक आदिम मनःस्थिति' ये कल्पना में छपी थी। छंद में लिखता था, छंद-बेछंद दोनों में लिखता था। छंद में भी लिखता था बेछंद में भी। तो अभी कहाँ मैंने पढ़ा कि उस कविता पर किसी ने एक पत्र लिखा था, उस समय। मैंने नहीं दिया संग्रह में उसको। कुछ पाठकों ने तो देखा ही होगा भई ! और सभी पाठकों तक पहुँच हो नहीं पाती। उनका फीड-बैक मिलता भी नहीं हमेशा। तो ... शायद ये सही हो आपका कहना कि उसके पाठक होंगे अपने इन्हीं सारी बातों को देखते हुए वो कविताएँ मैं ढूँढ़ रहा हूँ। और अभी वो कविता मिली नहीं मुझे, लेकिन मिल जाएँगी। मैंने पता कर लिया है।

xkfcUn i d kn % अच्छा।

dnkjukFk fl g % कहीं ट्रेस मैंने कर लिया है। उन कविताओं का एक चयन मैं दे रहा हूँ। उससे शायद वो बीच का गैप जो है उसकी थोड़ी-सी भरपाई हो। पूरी नहीं। क्योंकि बहुत-सी कविताएँ खो गई हैं। बहुत-सी।

xkfcUn i d kn % हूँ ! हूँ ...

dnkjukFk fl g % अब वो कहीं नहीं मिलेंगी। एक बहुत मामूली पत्रिका मान लीजिए 'देवरिया' से छपती थी। अब वो पत्रिका ... अब उसकी प्रति तो मिलेगी नहीं, छोटे कस्बे से छपती थी। उसमें छपी। श्रीकांत वर्मा एक पत्रिका निकालते थे उसका नाम ...

xkfcUn i d kn % कृति।

dnkjukFk fl g % नहीं भाई, ये तो बाद की बात है। ये तो मैं आदिकाल की बात कर रहा हूँ, अपने आदिकाल की।

तो वो 'नई दिशा' या 'दिशा' जो भी नाम उसका हो, वो बिलासपुर से निकलती थी और तब श्रीकांत वर्मा दिल्ली नहीं आए थे। वहीं रहते थे तब वो इतने प्रसिद्ध भी नहीं थे। संयोग ही कहिए कि वो मेरी कविताएँ पता नहीं क्यों थोड़ी अच्छी लगती थीं उनको उस समय।

xkfcUn i d kn % अच्छा, अच्छा।

dnkjukFk fl g % तो मुझे पत्र लिखा करते थे ... तो।

xkfcUn i d kn % बिलासपुर से ही।

dnkjukFk fl g % बिलासपुर से। इस तरह से हमारा-उनका पत्राचार हुआ। और वो शुरू से ही नई कविता के विरोधी थी।

xkfcUn i d kn % अच्छा।

dnkjukFk fl g % श्रीकांत वर्मा अपने पत्रों में लगातार कहते थे कि तुम्हारी कविताओं में नई कविता नहीं

है। नई कविता से अलग एक रंग है जो नई कविता वालों में नहीं है। कुछ देशीपन, कुछ...कुछ दिखता होगा। उसमें एक कविता और वो पहले मेरे स्वाद बोध में ...। मैं कहना चाहूँगा ... उन दिनों मेरा परिचय जिस कवि से हुआ, दो कवि थे। एक पॉल एलुवार, एक नेरुदा। नेरुदा से पहले मैं परिचित हुआ, पॉल एलुवार से बाद में। एक थे फ्रेंच, एक थे स्पेनिश।

xkfcUn i d kn %जी।

dnkjukFk fl g %नेरुदा की कुछ कविताएँ पढ़ी थीं। अरे ! मुझे एकदम से नई दुनिया खुलती हुई लगी। अंग्रेजी अनुवाद मैंने कविताओं के देखे थे और एकदम से मुझे लगा कि अरे ! ये तो क्या दुनिया है !

xkfcUn i d kn %अच्छा ... !

dnkjukFk fl g %'एलिस वंडरलैण्ड' की तरह मुझे लगा कि अरे ! ये काम आएँगी। अरे ! ये हम कहाँ पड़े थे अब तक। तो ये असर था। उनका। और उस ...।

xkfcUn çl kn %ये लगभग कब की बातें होंगी ? किस समय की ?

dnkjukFk fl g %53-54

xkfcUn i d kn %53-54

dnkjukFk fl g %तो मैंने इण्टरमीडिएट करके बी. ए. में प्रवेश किया था। ये वो समय था। बनारस में ये सारा साहित्य सुलभ होता था, तो मिल जाता था।

xkfcUn i d kn %तो क्या ऐसा है ?

dnkjukFk fl g %तो वो जो कविता पहली मैंने पढ़ी थी नेरुदा की। 'एम टायर्ड ए बीइंग ए मैन' ये सेंसिबिल्टी मुझे चौंकाने वाली थी 'एम टायर्ड ए बीइंग ए दी मैन' मैं आदमी होते-होते थक गया हूँ।

xkfcUn i d kn %वाह ! वाह !

dnkjukFk fl g %अब वो। नेरुदा की इस कविता के साथ और कुछ कविताएँ पढ़ी थीं। एक बहुत लूज सेंसिबिल्टी जीवन की जो कुछ और दिशाओं में दौड़ती है और बहुत चीजों को सूँघती और देखती हुई, छूती हुई चीजें और वो सारे संयश जो सक्रिय हों एक साथ। ऐसी कविता लगी उसकी। तो मैं उस कच्चे प्रभाव में एक कविता बनाने की कोशिश की। और लूज शैली में, वो प्रोज़ वाली ...

xkfcUn i d kn %हूँ ! हूँ !

और मेरे पास अनुभव के नाम पर मेरा गाँव के खेत, कछार, नदी। पहाड़ मेरे गाँव में हैं नहीं। तो वो सब कुछ और फिर शहर आ गया था तो उसका छोटा-सा अनुभव, बहुत मामूली अनुभव वो भी था। वो सब कुछ लेकर कविता मुझे

एक ही लाइन उसकी याद आ रही है कि 'न जाने यूँ वे पगडंडियाँ अब कहाँ होंगी' ऐसे कविता शुरू होती थी। और उस मकई के खेत का वर्णन और ये वो गंध, स्वाद ...

xkfcUn i d kn %जी।

dnkjukFk fl g %वो सब कुछ। यानी वो एक ऐन्द्रिक बोध को सक्रिय करने वाली चेष्टा थी कविता में। और वो कशीब डेढ़ पेज की कविता होगी। बड़े उसमें छपता था वो अंक, उसमें छपी थी वो। वो मुझे मिलती नहीं। वो मेरी पहली ब्रेक थी कहुँगा मैं जिससे मैं ... मुझे ये लगा कि मैं एक 'प्वाइंट ऑफ डिपार्चर' मेरी दृष्टि में आ रहा है हिन्दी में नहीं। तो इस तरह से तो ... गोविन्द जी जो आप कह रहे थे, उस बीच यही सब घटित होता रहा मेरे साथ। फिर पॉल एलुवार की कविता का अनुवाद भी किया, जिसका जिक्र भी मैंने किया है। कहाँ किया है कुछ याद नहीं आ रहा है। शायद तीसरा सप्तक में किया है। तो उसकी 'लिबर्टी' पोएम मैंने पढ़ी। आहा ! उसका मेरा हिन्दी में अनुवाद भी कहीं छपा था किसी छोटी पत्रिका में, जिसको ये जो अपने बीच वाले पीरियड की कविताएँ जो दे रहा हूँ, जो अभी जाएँगी प्रेस में। तो उसमें वो अपना अनुवाद भी दे रहा हूँ। क्योंकि वो मेरे जीवन में उस अनुवाद का इतना महत्व है कि ...

xkfcUn i d kn %एक कविता तो शायद आपकी 'अभी बिल्कुल अभी' में भी है। 'टुमारो इज़ अवर परमानेंट अर्डेस'। शायद।

dnkjukFk fl g %कविता नहीं वो तो कोटेशन है।

xkfcUn i d kn %कोटेशन है वो उनकी।

dnkjukFk fl g %मुझे लाइन अच्छी लगती थी - 'टुमारो इज़ अवर परमानेन्ट एड्रेस'। उतने बड़े कवि नहीं थे, लेकिन ये पंक्ति बहुत अच्छी लगती थी। तो ये था। बीच के अंतराल की बात आप कर रहे थे, तो उसमें बहुत कुछ छूट गया था। वो 'नई दिशा' वाली किताब मुझे मिल नहीं रही है। जो मैं बात कहना चाहता हूँ कि उस बीच की मेरी बहुत-सी कविताएँ अप्राप्य हैं, मिल नहीं रही हैं। उसमें बहुत सारी कविताएँ कच्ची हैं। सारी ही शायद कच्ची होंगी लेकिन वो कच्चापन आना चाहिए सामने।

xkfcUn i d kn %वो आपकी कविताएँ जब 'जमीन पक रही है' के रूप में आई तो ऐसा लगता है कि आप छंद की जमीन छोड़कर धीरे-धीरे छन्द से इतर राहों की तरफ या कहूँ कि काव्य में जो थोड़ा गद्य की सत्ता है और शक्ति है उसको आप एक तरह से विकसित करने की तरफ चल पड़े शायद ...।

dnkjukFk fl g %सही कह रहे हैं आप, क्योंकि मुझे लगा कि ...

xkfcUn i d kn %तो किसके प्रभाव से कैसे हुआ ये ?
dnkjukFk fl g %जिस समय की मेरी ये कविताएँ हैं, जिस दौर में मैं काम कर रहा हूँ, उस दौर की लय, गद्य की लय के निकट है।

xkfcUn i d kn %जी।

dnkjukFk fl g %मैंने एक कविता लिखी वो भी नहीं मिली कभी ...। 'चिड़ियाँ गुनगुना रही हैं गद्य का एक टुकड़ा'। उस ज़माने में एक कविता लिखी थी। तो एक मेरे उस समय के प्रबुद्ध पाठक ने कहा कि ये आप क्या कह रहे हैं ? ये तो गद्य की तरफ जाने की बात हो रही है। और चिड़ियाँ गद्य कैसे गुनगुनाएँगी। बहरहाल। तो उस समय गद्य की ओर बढ़ने की कोशिश और हमारे समय का सर्वोत्तम गद्य तोल्सताय से लेकर ... वो हमारे समय के हैं। मैं तोल्सताय को अपने समय का मानता हूँ, मेरे लिए ...। भटक जाऊँगा तोल्सताय में तो लौटूँगा नहीं। छोड़ता हूँ। तो उस गद्य की लय की तलाश की ओर बढ़ रहा था और फिर उसका अपना एक मुहावरा गढ़ने की कोशिश की थी मैंने। कच्ची-पक्की जो भी है। उसमें कविता के ढाँचे के लिहाज़ से एक कविता वो क्यों बनी, कैसे बनी ? कविता कैसे बन जाती है कोई जानता है ? आप तो कवि हैं आप भी नहीं जानते होंगे ? कोई नहीं जानता। वो कविता बन गई। पसोवा बड़ा कवि था पुर्तगाल का। उसको कहीं पढ़ रहा था कि अच्छी कविता ज्यादातर तन्द्रा की अवस्था में लिखी गई थी। यानी बहुत कांशसली आप काम नहीं कर रहे हैं।

xkfcUn i d kn %अवचेतन ! अवचेतन के धरातल पर।

dnkjukFk fl g %तो ऐसी एक कविता है, 'एक प्रेम कविता को पढ़कर' जो आपने चयन में दिया भी है।

xkfcUn i d kn %हाँ। मुझे वो कविता एक अलग ढंग की और बहुत अद्भुत कविता लगी।

dnkjukFk fl g %उस कविता पर मुझे ऐसे-ऐसे पत्र मिले हैं और विदेश का पत्र मिला है उसका फ्रेंच में अनुवाद हुआ है। फ्रेंच के किसी कवि ने पत्र लिखा था किसी पत्रिका में। अंग्रेजी की पत्रिका में। तो मैंने पढ़ा कि इसने तो मेरे लिए एक नई दिशा खोल दी।

xkfcUn i d kn %वाह !

dnkjukFk fl g %वो तंत्र कुछ अजीब-सा तंत्र। जिसमें कविता आपको ध्यान होगा कि ...।

xkfcUn i d kn %जी।

dnkjukFk fl g %कविता कहीं नहीं मिलती है, कि स्त्री कैसे विकसित हो रही है, और धीरे-धीरे स्त्री। एक तरह का नारीवाद ही है पुरुष की दृष्टि से देखा गया कि कविता

प्रेमिका की तरह, कविता में बतखें हैं। और ये माहौल था और धीरे-धीरे वो कविता से बाहर चली जाती है और कविता को ध्वस्त कर देती है।

xkfcUn i d kn %बड़े 'एक्सट्रैक्शन' से काम लिया आपने उसमें। कविता में अमूर्तन है। और शायद अमूर्तन उसकी सम्मोहिनी भी है, और सम्मोहन जो है अमूर्तन के कारण है।

dnkjukFk fl g %मैंने कहीं पाठ किया था उसका। जिसमें अमृता प्रीतम बैठी थीं। वो बहुत मुग्ध हुईं और बोलीं केदार जी, मैं तो आपको जानती नहीं थी। बहरहाल। वो कविता हिंदी में उतनी चर्चित नहीं हुई जितनी मैं चाहता था कि वो हो। लेकिन कुछ उसके अनन्य श्रोता और पाठक हैं जो चाहते हैं कि मैं उस पर बात करूँ। खैर। ये सारी कोशिशें अनायास होती रहीं। मैंने कभी सचेष्ट नहीं किया। 'जमीन पक रही है', की सारी कविताएँ एक खास तरह की अनायासता में लिखी गई हैं। ये न सोचते हुए कि वो अच्छी कविता बनेंगी बुरी कविता बनेंगी।

dnkjukFk fl g %जो बन गया, सो बन गया। ये हुआ है। मेरा ख्याल है कि कविता शायद ऐसे भी बनती है, शायद वैसे भी बनती है। चलिए।

xkfcUn i d kn %हाँ ...। हालाँकि ये बड़ा सवाल मेरे मन में है क्योंकि कविता का एक संबंध जो है वो समाज से भी है। और समाज में रहने वाले जो बहुत सारे, बहुत सारी विचारधाराओं के बीच में आदमी जीता है। तो उससे भी जुड़ा हुआ है तो मैं जानना ये चाहता हूँ कि काव्य स्वर को विचार धारा के ढाँचे में बाँटकर कभी-कभी देखा जाता है वो एक कविता के अनुशासन के लिए या कवि के लिए या खुद कविता के लिए वो कितना कहाँ तक .. क्या ज़रूरी है ? कितना उसका औचित्य बनता है।

dnkjukFk fl g %यह एक पुराना सवाल है लेकिन टकराना चाहिए इससे। मैं विचारधारा का कायल नहीं हूँ। मैं यह जोर देकर कहना चाहता हूँ। विचार का कायल हूँ और विचारधारा भी एक तरह की कंडीशनिंग है। क्योंकि विचार धारा कहीं न कहीं जाकर एक राजनैतिक तंत्र से भी जुड़ती है ढाँचे से भी, संगठन से भी जुड़ती है। तो साहित्य किसी भी ऐसे अनुशासन से नियंत्रित हो यह शायद उसके लिए बहुत हितकर नहीं होता। विचारधारा के कई रूप हैं, तुलसी के यहाँ भी विचारधारा थी। अब अध्ययन का विषय है कि उस विचारधारा के कारण अगर मार्क्सवाद का प्रभाव है। मार्क्स ऑल टाइम-ग्रेट विचारक हैं। और मैं तो 2012 में आपसे बात कर रहा हूँ।

xfcln i l kn %जी।

dnjukFk fl g % 2012 में आज मुझे लगता है गोबिन्द जी कि मार्क्स कभी इतने रेलिवेंट नहीं थे जितने आज हैं। पूरे इतिहास में आज कितनी ज़रूरत है मार्क्स की, मार्क्स के विचार की। मार्क्स की कोई विचारधारा नहीं है। मार्क्स के विचार हैं, जो खुले विचार हैं। जिस पर लोग सुनते हैं, गुनते हैं, व्याख्या करते हैं। असंख्य व्याख्याएँ उसकी हुई हैं, होती रहेंगी। लेकिन कुछ बुनियादी चीज़ें उनकी हैं। और उन बुनियादी चीज़ों का अभी महत्व है हमारे लिए। तो मुझे लगता है कि आज ये नवउदारवाद तथाकथित नवउदारवाद और नवपूँजीवाद जिस संकट के दौर से गुज़र रहा है और अच्छा है कि उस संकट के दौर से गुज़र रहा है। क्योंकि संकट उसके विनाश की ओर भी उसे ले जा रहा है। ऐसा मुझे लगता है। इस दौर में विकल्प के रूप में और एक सशक्त विकल्प जो मैं शब्द जोड़ रहा हूँ कि विकल्प जब हम कहते हैं तो रूसी मॉडल फेल हो चुका। चीनी मॉडल उतना स्वीकार्य नहीं रह गया है। मैं अभी चीन को 50% प्लस प्वाइंट देता हूँ। 50% को लेकर मेरे मन में अभी संदेह है। लेकिन एक प्रयोग कर रहा है चीन। उस प्रयोग को अभी हमको देखने की ज़रूरत है पर इस दौर में जब पूँजीवाद खुद अपने संकटों से घिरा है। और पूरी दुनिया को घेर रहा है, तब इस समय एक सशक्त विकल्प के रूप में शायद मार्क्सवाद के भीतर से निकलने वाला एक ज़्यादा लिबरल रास्ता ज़्यादा डेमोक्रेटिक रास्ता मैं कहूँगा। डेमोक्रेटिक। मेरा जोर है इस पर।

xfcln i l kn %हूँ। हूँ।

dnjukFk fl g % अगर वो विकल्प निकले तो कुल मिलाकर जो भी हो हमारे इस छोटे से देश में और पड़ोस में नेपाल में क्रांति हुई। राजा हटा दिया गया। एक नई सत्ता आई और मार्क्सवादी आंदोलन था वो माओवादी थे वो। वो एक विकल्प वहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं और मिला—जुला है वो। वही चलेगा। वहाँ कई तरह के लोग बैठे हुए हैं। सब लिबरल हैं, डेमोक्रेटिक हैं, डेमोक्रेट हैं और मिलकर एक रास्ता निकालने की कोशिश कर रहे हैं जिसमें धुर मार्क्सवादी भी शामिल हैं। और लिबरल लोग भी शामिल हैं। एक प्रयोग चल रहा है हमारे देश के बगल के छोटे से देश में। उस प्रयोग को मैं बहुत उम्मीद की निगाह से देखता हूँ। फेल हो, पास हो इसके बारे में कोई भविष्यवाणी नहीं कर पाऊँगा। ऐसे प्रयोग होते रहने चाहिए। और मैं उसका समर्थक हूँ।

xfcln i l kn % मैं उसी सवाल की ओर फिर थोड़ा सा लौटूँ कि क्या विचारधारा की कोई सार्थकता या किसी स्तर पर कविता के संदर्भ में कोई उपयोगिता नहीं हो सकती है ?

dnjukFk fl g % कविता को मुक्ति चाहिए। विचार मुक्त करता है विचारधारा ...

xfcln i l kn % ... बाँधती है।

dnjukFk fl g % यह अकारण नहीं है कि मार्क्स ने खुद विचारधारा को 'फाल्स कांशसनेस' कहा था। तो कुछ तो होगा उसके दिमाग में। वो तो महान थे भई। हम लोग अपनी छोटी सीमा में जो समझते हैं। विचारधारा भी कंडीशनिंग करती है। अब ये इतनी बड़ी क्षमता सबमें नहीं होती। दो कवि अपवाद लगते हैं जो विचारधारा से बँधकर भी जो महान हैं। कुछ और मिल जायेंगे शायद।

xfcln i l kn %जी।

dnjukFk fl g % मैं दो की नज़ीर दूँगा ' ब्रेख्त और तुलसीदास।

देखिए क्या विलोम हैं तुलसीदास और ब्रेख्त। तुलसीदास जो है बाकायदे बल्कि वर्णाश्रम धर्म की विचारधारा को मानते हैं बावजूद इसके उन्होंने जो कविता लिखी उसमें बड़ा भी आता है छोटा भी आता है। सब मिलाकर वो कविता जो है मानस में और मानस से बाहर ओर ज़्यादा ये हम भूल जाते हैं कि रामचरितमानस का बड़ा हिस्सा जो है आदिवासी तत्वों से भरा है। वानर हैं, बंदर हैं उनकी कथा है। मैं मानस को कई अलग ढंग से देखता हूँ। बाकी कविता तुलसीदास की कवितावली और हनुमान बाहुक को बहुत महत्वपूर्ण मानता हूँ। वो डिपार्चर है एक तरह का। वगैरह—वगैरह। तो तुलसीदास उससे बाहर भी जाते हैं। हमको अपनी बँधी हुई विचारधारा से लड़ना भी चाहिए, टकराना भी चाहिए और ब्रेख्त तो किसी को भी स्वीकार नहीं हुआ। ब्रेख्त की कविता ...। वो कम्युनिस्ट था, घोर कम्युनिस्ट जिसको जर्मनी में रहने की जगह नहीं मिली तो वह भाग गया। कुछ समय के लिए वो वहाँ गया था अमेरिका। लौटकर आ गया। और एक किताब उसके जीवन में रूस में नहीं छपी उसकी। जबकि सारी दुनिया में छाया हुआ था। कम्युनिस्ट को कम्युनिस्टों ने स्वीकार नहीं किया। तो ये सारी सीमाएँ हैं एक महान पंक्ति, एक शेर उर्दू के एक ऐसे शायर ने लिखी थी जिसको मज़ाहिया शायर माना जाता था जिसका नाम अकबर इलाहाबादी था। क्या अद्भुत शायर था। वो उसका एक शेर मुझे अद्भुत लगता है। और शायद वह विचारधारा पर भी लागू होता है।

xfcln i l kn %वाह ! इरशाद ... इरशाद।

dnjukFk fl g % मैं चाहता हूँ कि बस एक ही खयाल रहे मगर खयाल से पैदा खयाल होता है।' ये है, ये डेमोक्रेसी है।

xfcln i l kn %हाँ ! हाँ।

दन्कुकफ् फ्लि ग् %में हिन्दी की सबसे डेमोक्रेटिक पंक्ति मानता हूँ। एक रीतिकाल का कवि हो गया – ग्वाल कवि नाम था उनका तो उन्होंने उस समय सत्रहवीं सदी में पंक्ति लिखी होगी कि – विधि के बनाए जीव जेते हैं जहाँ के जहाँ खेलन फिरत देव। (ये ब्रह्मा के बनाए हुए जीव जो हैं उन्हें मुक्त करो, बाध्य मत करो।) तो इस तरह से विचारधारा को लेकर मेरे मन में जो है स्पष्ट राय आपके सामने रखी। मैं उन लोगों का सम्मान करता हूँ विचारधारा के तहत ... देखिए एक शेर भूल रहा हूँ गालिब का ...

मरे बुतखाने में तो काबे में गाडे बरहमन को ...

(अच्छा, बरहमन अपने अकीदे को मानने वाला और एक ही विचार में लगातार निबद्ध हो, निष्ठावान हो तो गालित कहते हैं कि मैं भी एक ही विचार को मानने वाला हूँ तो उसका सम्मान तो करूँगा।)

खकसुन इल कन %देखा गया है कि कवि अपने आरंभिक दौर में, उसकी काव्यानुभूति का जो साँचा है कुछ प्रगीतात्मकता लिए हुए होता है। और उसमें लोक के प्रति भी एक आत्मीय या रागात्मक जो संबंध है ये बना रहता है, लेकिन धीरे-धीरे देखा है कि वो क्षीण होता जाता है तो ऐसा आखिर क्या होता होगा किसी कवि के जीवन में ?

दन्कुकफ् फ्लि ग् %ये हमेशा के लिए सच होता हो ऐसा नहीं है।

खकसुन इल कन %हाँ। ये भी है।

दन्कुकफ् फ्लि ग् %हमारे दौर का ये सच जरूर है।

खकसुन इल कन %जी।

दन्कुकफ् फ्लि ग् %चूँकि कुल मिलाकर बीसवीं सदी में हम लोग थे पले-बढ़े। तो इसमें लिरिसिज़्म कमतर होता गया है। मैं अब याद दिलाऊँ कि भारतीय कविता, बड़ी कविता भारत की यदि दो का उल्लेख करूँ तो रामचरितमानस गीतात्मक महाकाव्य है, गाया जाता है उतना कोई महाकाव्य नहीं गाया जाता जितना कि रामचरितमानस गाया जाता है। और दूसरा गीतांजलि। गीतांजलि सारा बंगाल गाता है, गाता रहेगा। तो ये लिरिसिज़्म जो है एक बुनियादी तत्व है और हमारे साहित्य में है कालिदास में भी है वाल्मीकि में भी है। मेरा ख्याल है कि भारतीय कविता एवं पाश्चात्य कविता में एक बुनियादी फ़र्क यह भी है कि गीति तत्व भारतीय कविता के मूल में शुरू से रहा है। और किसी न किसी रूप में आप अभी भी दिखा सकते हैं। लगता है आज भी, मेरे यहाँ थोड़ा बहुत ये है। तो ये था। लेकिन समय गीतितत्व के अनुरूप नहीं है जिस तरह का ढाँचा हमारे समाज का बन रहा है। लगातार हमारे आज के समय की सबसे बड़ी समस्या असहिष्णुता है। एक असहिष्णु समाज जो हिंसा की ओर बढ़ रहा है। हर स्तर

पर ये काम कर रहा है और ये मैं देख रहा हूँ पिछले पच्चीस-तीस सालों में ये बढ़ रहा है। तो इस समाज में हत्या, मारकाट, भ्रष्टाचार, अन्याय। हम लाख संविधान की बात समझाएँ, संविधान हमारा बराबरी आदि की बात करता है, उसका एक राजनैतिक स्वरूप या ढाँचा तो बना है कि अब वो जो दबे-कुचले लोग हैं सत्ता में भी आ रहे हैं, लेकिन सत्ता में आने के बाद सत्ता का जो है वह एक ही बन जाता है। दुर्भाग्य से। सत्ता में आते ही चरित्र बदल जाता है। यह भी देख रहा हूँ मैं, जो दुर्भाग्यपूर्ण है, फिर भी कुछ बचा हुआ है।

मुझे यह कहने दीजिए कि इसमें एक बड़े विचारक हमारे देश के अम्बेडकर की बहुत बड़ी भूमिका है। हम अम्बेडकर को इससे पहले नहीं समझ पाए थे। तो वो जो अम्बेडकर का हस्तक्षेप था पूरे भारतीय समाज और संस्कृति और इतिहास में वो शायद बहुत निर्णायक साबित होगा आने वाले भविष्य के लिए।

छोटे स्तर पर हस्तक्षेप एक और व्यक्ति ने किया था, लोहिया ने। इन दोनों लोगों ने हस्तक्षेप किया था। एक बड़ा एक छोटा। मेरा ख्याल है हमारे भारतीय समाज को वो जो दिशा देते रहे हैं भविष्य में और अधिक 'रिलिवेन्ट' होते जाएँगे। ये मैं थोड़ा हटकर बात कर रहा हूँ।

बात हो रही थी कि हमारा आज का समय जो है वह 'लिरिकल' नहीं है। बाज़ार 'लिरिसिज़्म' का दुश्मन है। बाज़ार यदि लिरिक हो गया तो बाज़ार रहेगा ही नहीं। तो बाज़ार ये करेगा कि गीत का इस्तेमाल करेगा लेकिन गाना उसके लिए बहुत पुण्य नहीं है। वह इसलिए फिल्मी गानों आदि का बाज़ार अपने लिए इस्तेमाल कर रहा है।

तो कहने का मतलब यह है कि एक तरफ़ जो 'लिरिक एलिमेण्ट' है वह कवि के भीतर तो है लेकिन लगातार उसे बाज़ार की शक्तियाँ छीन रही हैं।

वे सारी बातें हैं। आप कवि हैं इसलिए बेहतर जानते हैं इस बात को। हम तो दबाव में काम करते हैं और बाहरी दबाव जिनसे न बचा जा सकता है, न बचा जाना चाहिए, वह दबाव महत्वपूर्ण है हमारे लिए। यह मानता हूँ। उन दबावों के तहत हम बनते हैं, हमारी संवेदनाएँ बनती-बिगड़ती हैं। तो 'लिरिसिज़्म' क्षरित हो रहा है।

खकसुन इल कन %तो कहने का मतलब ये है कि जो चुनाव करने का अधिकार है ...।

दन्कुकफ् फ्लि ग् % दूसरी ओर ... दूसरी ओर मैं कहूँगा कि इधर को जो लेखन हो रहा है दो शब्द आपके सामने रखूँगा। गंभीर लेखन एवं लोकप्रिय लेखन। लोकप्रिय लेखन अभी भी गीतितत्व के बहुत करीब है। गंभीर लेखन उससे दूर होता चला गया है। लेकिन इधर मैंने पाया

है कि जिसको हम लोकप्रिय कहते हैं उसके प्रति रुझान बढ़ रहा है। इस समय उदाहरण देकर बात करना मुनासिब नहीं, लेकिन यह बढ़ रहा है और उसको एकदम निरस्करणीय नहीं माना जा रहा है। तो वो चीज़ें हैं जो लौट रही हैं मेरा खयाल है गीत तत्व जाएगा नहीं, लौटकर जाएगा क्योंकि भारतीय साहित्य की मूल संवेदना का अंग है वह। आप जानते हैं रामायण लिखी गई तो उस समय लव-कुश गाते फिरते थे। अब आजकल को लेकर जो गायन की परम्परा शुरू हुई है वह परंपरा लंबे समय से चल रही है। मेरा खयाल है लौट-लौटकर वह आती रही है यानी जो बुनियाद है वह मरती नहीं है।

खल्लन इल कन %यानी प्रगीत जो है वह प्राण तत्व तो है।

दकुकक फल ग %जिसको हम गीत के नाम से जानते हैं, वो नहीं जिसको गीतकार ने बताया है। वो नहीं गीत तत्व से अलग एक और चीज़ है जिस पर हम चर्चा आगे करेंगे।

खल्लन ङल कन %आपको इस वर्ष भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। पुरस्कार के संदर्भ में आप कुछ कहना चाहेंगे।

दकुकक फल ग %मैंने कृतज्ञतापूर्वक इस पुरस्कार को स्वीकार किया है। इसने मेरे साहित्यिक दायित्व को किसी हद तक बढ़ाया है। पर यहाँ मैं स्पष्ट कर दूँ कि कोई भी पुरस्कार किसी मूल्यांकन का मानदण्ड नहीं होता। ज्ञानपीठ भी इसका अपवाद नहीं है।





HKk'kkj l`tu vks foKku
i ou ekFkj*

'भाषा' लगभग 'प्राण तत्व' की तरह है। हम इसी में सोचते/समझते/विचार करते हैं। इस 'प्राण तत्व' के बारे में कुछ भी कहना – अपने अवचेतन को टटोलने जैसा है आज 'भाषा-विहीन' होने का अर्थ है – मनुष्य को क्रमिक विकास की सीढ़ी पर 10-12 लाख वर्ष पीछे ले जाना। उस समय मनुष्य के पूर्वज, Homo-Erectus और Homo-Habilus जन्म ले चुके थे। उनके मस्तिष्क का आकार हमसे आधा ही था 700 सी.सी. के लगभग। उनके पास एक अविकसित वाणी तन्त्र तो था, 'भाषा' नहीं थी।

'भाषा' के लिए 'शब्द' चाहिए, शब्द के लिए स्वर और 'स्वर' के लिए एक विकसित वाणी तन्त्र जो ध्वनियों के बड़े फलक को हमें उपलब्ध कर सकता है। इसी के साथ-साथ, नर्व-कोशिकाओं का समूह तंत्र जिनके माध्यम से मस्तिष्क, वाक् को निर्दिष्ट तथा नियंत्रित करने में समर्थ हो। 'शब्द' को वाक्य में साधने के लिए नियमों का तंत्र तथा प्रत्ययों का प्रतिनिधित्व करने वाले 'कोड' भी चाहिए। इन सबके संश्लेषण के साथ ही मनुष्य किसी अन्य से संपर्क स्थापित करने में समर्थ हो सकता है।

किंतु कुछ नृत्तत्व-शास्त्रियों का मानना है कि हाव-भाव/भंगिमाओं की प्रोटो भाषा विकसित हो रही थी। इस प्रोटो-भाषा में वाक्य-रचना/क्रियाओं/विश्लेषणों का निरा अभाव था। दरअसल पिछले कुछ वर्षों के शोध-कार्यों से पता चला है कि इस प्रोटो-भाषा के मूल में ऐसी नर्व-कोशिकाओं का योगदान है, जिन्हें हम, प्रतिबिम्बन नर्व-कोशिकाएं कहते हैं (Mirror-neurons)। मस्तिष्क की अधिकतर कोशिकाएं, तब 'सक्रिय' हो उठती हैं, जब आप स्वयं किसी क्रीड़ा, अथवा कार्य को कर रहे होते हैं तथा उनकी सक्रियता तब बेहद क्षीण हो जाती है जब व्यक्ति किसी अन्य को उसी क्रीड़ा/कार्य को करते हुए देखता है। किंतु प्रतिबिम्बन-कोशिकाएं तब भी सक्रिय रहती हैं जब कोई अन्य उसी क्रीड़ा/कार्य को कर रहा होता है, जो एक लक्ष्य-निर्धारित क्रीड़ा हो। हालांकि इस प्रश्न का उत्तर अभी हमारे पास पूर्णतः नहीं है कि यह प्रतिबिम्बन कोशिकाएं किस प्रकार यह जान जाती है – कि कौन सी क्रिया/भंगिमा लक्ष्य-निर्धारित है या नहीं, लेकिन यह माना जरूर जा रहा है कि यह प्रतिबिम्बन – नर्व-कोशिकाएं हमें अनुकरण (Imitation) की भक्ति प्रदान करती है – जो भंगिमाओं की

*लेखक – दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं।

भाषा को जन्म देने में सहायक होती है।

मानव मस्तिष्क में सौ करोड़ से अधिक नर्व-कोशिकाएं हैं। एक वर्ग-इंच में मौजूद इन कोशिकाओं को जोड़ने वाली महीन तंत्रिकाओं को यदि खोल दिया जाए तो वे दस हजार मील पहुंच जाएगी। इन कोशिकाओं की 'भाषा एक क्षणिक-विद्युत तरंग का 'विस्फोट' होती है। आँख के सामने दिखाई देती आकृति का अक्स 'ज्यों का त्यों' मस्तिष्क तक नहीं पहुंच जाना। आँख की ग्राही कोशिकाएं दीप्ति और अंधकार के ऐसे संयोजनों को ढूंढती है – जिससे आकृति की 'कोर' या 'परिसोमा' का आकलन हो सके। 'अर्थवान संयोजनों को ढूंढने के पीछे जो कोशिका विज्ञान है उस पर भले ही निर्णायक उत्तर न हो किन्तु यह स्पष्ट है कि हमारे पास एक 'जैविक-भाषा' है – जिसका विधान अन्य जीवन-रूपों में भिन्न है। उदाहरण के लिए आँख में जो विशेषज्ञ 'ग्राही-कोशिकाएं' हैं वे क्षैतिज (Horizontal) ऊर्ध्व (Vertical) और विकर्ण (diagonal) रेखाओं को पहचानती हैं – किंतु कई जीव रूपों में विकर्ण के लिए कोई 'शब्द' नहीं होता।

मानव-मस्तिष्क पर शोध से मालूम चला है कि दृश्य-जगत किसी एलबम की तस्वीरों सा हमारे मस्तिष्क की दराजों में रखा मिल नहीं जाता। दृश्य जगत-मस्तिष्क में दर्जनों प्रकार के नक्शों में तब्दील हो जाता है यदि एक नक्शा रंगों का है तो दूसरा खुशबुओं का/तीसरा दीप्ति का/चौथा गति का ...। इसीलिए मस्तिष्क के किसी भाग में चोट से बहुत कुछ खो जाता है – रंगों/खुशबुओं/को खोने से लेकर/स्थान व काल के प्रत्ययों का भी लोप हो जाता है। ऐंद्रिय-जगत, कई बेहद जटिल रूपों में हमारे मस्तिष्क में अवस्थित है। आश्चर्य की बात यह है कि कोई एक 'जटिल-रूप' दृश्य-जगत से अनुरूपता नहीं रखता। इसका तात्पर्य यही है कि किन्हीं जैविक प्रणालियों द्वारा मस्तिष्क-यथार्थ का पुनर्सृजन करता है – इस पुनर्सृजन की सीमाएं क्या हैं – इसका विज्ञान सम्मत अभी कोई उत्तर नहीं है – लेकिन यह निश्चित है कि हम जिस 'भाषा' का प्रयोग करते हैं – वह इसी पुनर्सृजन पर ही आधारित है। इन अर्थों में यह निष्कर्ष देना उपयुक्त है कि हम इस 'जैविक-भाषा' की परिधि में कैद हैं।

इस बात को प्रसिद्ध फ्रेंच भाषा-विद मित्सो-रोनों ने नोएम-चोम्सकी से लंबी बातचीत में उठाई : 'भाषा पर शोध कार्यों से यह मालूम चला है कि उसकी संरचना में

ध्वनि-समूह के अपरिमित भंडार में से एक सीमित उपसमुच्चय का ही शब्दों के क्रमिक संयोजन में उपयोग होता है, और यह भाषा की सीमा भी तय कर देता है।' इस पर चोम्सकी द्वारा टिप्पणी थी कि 'भाषा की इस सीमा से ज्ञान-अर्जन की संभावनाएं बड़ी गहनता से संपृक्त हैं।'

भारतीय चिंतन में भी शब्द, अर्थ, भाषा, ज्ञान, सर्वव्यायी तथा अंशव्यायी पर शताब्दियों तक लंबी बहसें चली हैं। न्यायसूत्र के प्रथम भाषाकार 'वात्स्यायन' ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में 'प्रमेय' और 'प्रमिति' की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं। 'प्रमेय' वह अर्थ जो जाना जाता है, प्रमिति उस अर्थ का यथार्थ ज्ञान है। न्याय, निर्विकल्पक तथा सविकल्पक ज्ञान की भी स्थापना करता है। सातवीं शताब्दी में भर्तृहरि ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'वाक्यपदीय' में 'ग्राहकत्व' तथा 'ग्राहयत्व' को शब्द की भक्ति के रूप में स्वीकार किया था। ग्राहकत्व अर्थात् 'प्रकट करने की भक्ति' तथा 'ग्राहयत्व' याने 'जो प्रकट किया गया हो।' नौवीं शताब्दी के मीमांसक कुमारिल भट्ट के शिष्य पार्थ सारथी ने जिसे 'आधेय' तथा 'आधार' से चिह्नित किया था। आधेय याने वह गुणवत्ता जो आधार अर्थात् 'तत्त्व' में प्रकट होती हो चौथी तथा सातवीं शताब्दी के बौद्ध दार्शनिकों दिङ्नाग और धर्मकीर्ति के 'अपोह' सिद्धांत। इन सिद्धांतों की अनुगूंज, सास्युर एवं अन्य पश्चिमी दार्शनिकों में भी सुनाई पड़ जाती है। लेकिन रिव्स भाषाविद सास्युर एक कदम आगे बढ़ जाते हैं, जब वे संकेत को वस्तु और नाम के मध्य की संधि मानने से इंकार कर देते हैं – और उसे ध्वनियों और प्रत्यय का सेतु बनाकर प्रस्तुत करते हैं। उनका मानना था कि संकेतों का यह विराट तंत्र हमारी स्मृति की रीढ़ है – और इसीलिए भाषा किसी हद तक समय में बद्ध है।

भाषा की इस सीमा से जुड़ा हुआ एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि ज्ञान-अर्जन की कला बद्धता के पीछे क्या भाषा में जन्में प्रत्ययों की सीमाओं का भी योगदान है? और क्या किसी नए विमर्श के लिए यह सीमाएं किसी हद तक बाधा बन जाती हैं? इस प्रश्न का उत्तर हमें विज्ञान के इतिहास से प्राप्त हो सकता है।

अरस्तु द्वारा प्रतिपादित गति के नियमों के अनुसार किसी भी वस्तु की प्राकृतिक अवस्था, स्थिरता ही है। जब कोई वस्तु ऊँचाई से गिरती है तो इसीलिए कि वह अपनी प्राकृतिक अवस्था को प्राप्त करना चाहती है। जब किसी भारी वस्तु को किसी मोटी रस्सी द्वारा पेड़ की डाल से बाँध, धक्का दे दिया जाता है, तब वह वस्तु काफी समय तक एक अर्द्ध-गोलाद्ध से झूलती रहती है। अरस्तु का मानना था यह वस्तु रस्से से झूल नहीं रही है – बल्कि एक 'ऊँचाई' से लगातार गिर रही है, उस वस्तु को अपनी प्राकृतिक अवस्था

में पहुंचने में कठिनाई हो रही है, क्योंकि रस्सी उसमें बाधा बन रही है। अरस्तु के समय में भौतिकी (फिजिक्स) की जो भाषा विकसित हुई थी उसमें मुख्यतः तीन प्रत्यय कार्यरत थे – वजन/ऊँचाई और समय। इन तीनों के माध्यम से ही गिरती हुई वस्तु के बारे में गणना की जाती थी। लगभग दो हजार वर्ष निकलने के बाद गैलिलियो का ध्यान इस झूलती हुई वस्तु की तरफ गया। जिसे अरस्तु ने किसी वस्तु का बाधित-गिरना समझा, गैलिलियो ने उसे एक नई दृष्टि से देखा और उसे गोलाकार गति के उदाहरण के रूप में समझा। विश्व को 'पेंडुलम' गैलिलियो की ही देन है। गैलिलियो अरस्तु के सिद्धांतों से परिचित तो था ही किंतु वह चौदहवीं शताब्दी में ज्याँ बूरिदान और निकोल ओरिस्मे के वेग-सिद्धांत (इम्पीटस-थियरी) से भी प्रभावित था। गैलिलियो के समय की भौतिकी की भाषा में वजन/ऊँचाई/समय के अलावा गोलाकार की त्रिज्या, कोणीय-विस्थापन तथा कोणीय गति के प्रत्यय भी शामिल हो चुके थे। कोणीय-गति और विस्थापन जानने की विधि अरस्तु के समय उपलब्ध नहीं थी, चूँकि उस काल में ज्यामिति और अलजबरा दो अलग-अलग विषय थे। ज्यामिति और अलजबरा की संपृक्ति से जो नई भाषा विकसित हुई, उसकी पीठिका गैलिलियो को उपलब्ध थी। एक ही प्रयोग को इतिहास अलग-अलग दृष्टि से देखता है – चूँकि प्रयोगों के इस मेले में भाषा हर बार किसी नए रास्ते से लिए चलती है।

कुछ विचारकों का यह मानना है कि विज्ञान का तर्क, प्रकृति और मनुष्य को दो विरोधी श्रेणियों में बाँट देता है जहाँ भाषा की रूपकात्मक एकता टूट जाती है। मनुष्य बिंबों के स्थान पर बौद्धिक प्रत्ययों की भाषा रचने लगता है। दरअसल यह पूर्ण सत्य नहीं है। प्राचीन ग्रीक दर्शन में तर्क, मन की वह भक्ति है जिससे हम रूप के पीछे छिपो सन् अथवा असत् का भेद कर पाते हैं। अरस्तु ने इस तार्किकता की भक्ति के लिए नया वाक्यांश प्रयोग किया 'उपोफेन्टिक-लोगोस'। सुप्रसिद्ध दार्शनिक 'हुसरल' के शब्दों में "यह तार्किकता, विचार, सत्ता अथवा अस्तित्व के प्रश्नों से कम बल्कि सत्ता के छल/छद्म से अधिक जूझती नजर आती है तर्क एक खंडित यथार्थ का ही उल्लेख करता दिखता है – तथ्य और तत्व, यथार्थ और संभावना। इस खंडित यथार्थ की तार्किकता को विचारकों ने विज्ञान की तार्किकता मान कर भूल की है। विज्ञान आनुभाविक संसार को बौद्धिक प्रत्ययों एवं कल्पना की उड़ान के साथ समझना चाहता है। 'हुसरल' का कथन है कि प्रकृति के गणितिकरण के कारण 'वैचारिक-कल्पनात्मकता' का ऐसा रूपविधान उपस्थित हुआ जिसका आनुभाविक संसार से तादात्म्य किया जा सकता था। यदि गैलिलियो के समय का गणित, अनुप्रयुक्त गणित में

बदल जाता है या ज्यामिति का अलजबरा से सम्मिलन, ज्यामिति की दृष्टव्य आकृतियों को बौद्धिक संक्रियाओं में परिवर्तित कर देता है, तब भी हमारे अनुभव के साँचे ठोस-कार्य-कारण वाले संबंधों से ही परिचालित होते हैं। ज्यामिति की कई आयामी दुनिया की धारण के बाद भी हमारा अनुभव जगत तीन आयामों वाली दुनिया में ही क्रियाकलाप करता है। विज्ञान के तर्क से जो बौद्धिक भाषा बनती है, उससे यह निष्कर्ष लेना कि मनुष्य का प्रकृति से संबंध ही टूट जाता है एक भ्रमपूर्ण धारणा है।

धार्मिक अथवा राजनैतिक सत्ता, जब भी कभी, ज्ञान के प्रश्न करने की तर्कशीलता प्रयोग एवं वैचारिक व्याख्याओं की स्वतंत्रता का हरण कर लेती है, तब-तब एक दमनकारी सार्वभौम तार्किकता को भी जन्म दे देती है। ज्ञान-विज्ञान वर्षों तक कुंठित हो जाता है और उसके सुदृढ़ रूप से पनपने की संभावनाएं बेहद ही क्षीण हो जाती हैं। एक ओर भाषा के कारण अपने विगत से निरंतरता, वैचारिक स्वतंत्रता पर बोझ भी बनती है, तो दूसरी ओर इतिहास में संचित ज्ञान, नए संवादों का प्रेरक भी। सत्ता द्वारा विमर्श को एक सूत्रीय बना देने, स्मृति के नकारात्मक एवं सकारात्मक पक्षों के बावजूद भी, ज्ञान की वैचारिक-कल्पनात्मकता पुराने प्रत्ययों को नए रूप में पुनर्सृजित ही नहीं कर लेती, नए प्रत्यय भी गढ़ लेती है। सृजन का यह खेल भाषा के संकेतों के तंत्र को भी किसी हद तक बदल देता है। संकेतों का तंत्र समाज में आपसी वार्तालाप करने के लिए तो सक्षम है किंतु चिंतन एवं सृजन के लिए उसे प्रत्ययों के कई समूहों से एक साथ जूझना होता है। यह तभी संभव हो पाता है जब भाषा का एक परिपक्व रूप सामने रहता हो – परिपक्वता जो एक दो सदियों में उत्पन्न नहीं हो पाती। सृजनात्मकता वैचारिकता की लंबी छलांग है जो कालबद्ध नहीं होती। दरअसल उसका आंतरिक गुण अपने काल की कुछ रुढ़ मान्यताओं का ध्वंस ही है। यह एक अलग बात है कि उस नई व्याख्या को उस काल में स्थान ही न मिले और उसे सदियों तक सुप्त ही छोड़ दिया जाए। लेकिन फिर

वह किसी और समय में प्रस्फुटित हो जाती है।

ईसा से डेढ़ शताब्दी पूर्व पाणिनी ने संस्कृत-व्याकरण के सूत्र दे दिए थे। उसी के आसपास 'अगस्तियार ने 'थोलकप्पियम' नामक व्याकरण ग्रंथ 'तमिल' में तैयार कर दिया था। पिंगल ने ईसा पूर्व शताब्दी में छन्दों को लिखने की जो विधि दी, वह आज के कम्प्यूटर की 'भाषा' से मेल खाती है। दूसरी शताब्दी में 'बोधायान' ने (प्राचीन वैदान्ती आचार्य) ने 'पाइथागोरस-थियोरम' का ज्यामिती द्वारा हल प्रस्तुत कर दिया था। पांचवी शताब्दी में, आर्यभट्ट ने गणना कर ली थी, कि पृथ्वी अपने अक्ष पर 23 घंटे, 36 पल और 41 क्षण में परिक्रमा कर लेती है। सातवीं शताब्दी में 'ब्रह्मगुप्त' ने 'शून्य' और 'अनंत' के लिए समीकरण दे दिया था। ग्यारहवीं शताब्दी में 'भाष्कराचार्य' ने सिद्धांत शिरोमणि/लीलवती/ बीजगणित/ ग्रह-गणित और 'अवकल गणित' के सूत्र दे दिए थे।

अरिस्ताकू नामक ग्रीम खगोल शास्त्री ने अनुमानित कर लिया था कि सूर्य पृथ्वी से तीन सौ गुणा बड़ा है और इसलिए पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूम रही है सृजनात्मकता की यह छलांग 18 सदियों तक कोपरनिकस का इंतजार करती रही। जॉर्ज बूल नामक गणितज्ञ ने सन् 1854 में अरस्तू के तर्क-शास्त्र पर आधारित 'बूलियन अलजबरा' नामक एक नई गणितीय विधि को प्राण दिए थे। लगभग सौ वर्षों तक यह अलजबरा इतिहास के पन्नों की धूल चाटता रहा। जब भौनान नाम का जर्मन भौतिकविद 'नए स्विचन-परिपथ' के लिए एक अलजबरा ढूंढ रहा था जो 'शून्य' और 'एक' पर आधारित होता उसे आश्चर्य हुआ कि वही अलजबरा सदी पूर्व लिखा जा चुका था। बूलियन-अलजबरा के प्रस्फुटन का समय आ गया था।

'सृजनात्मकता की छलांग' अपने समय के प्रत्ययों को अपदस्थ कर किसी-न-किसी काल में अपना स्थान ग्रहण कर ही लेती है। क्योंकि दरअसल सृजन काल-ध्वंस भी तो है।

भारत के विभिन्न प्रदेशों के बीच हिन्दी-प्रचार द्वारा एकता स्थापित करने वाले सच्चे भारत-बन्धु हैं।

—श्री अरविन्द

अंग्रेजी सीखकर जिन्होंने विशिष्टता प्राप्त की है, सर्वसाधारण के साथ उनके मत का मेल नहीं होता।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

छोड़ के गए तो ठीक नहीं होगा, छोटे मियाँ! और वह भी रमजान में। गाँव में घुसने नहीं देंगे। भाई, यह क्या बात हुई कि और समय तो गाँव में, पर्व-त्योहार में बाहर! यह कैसे हो सकता है?" यह सोच रहे थे, "यह तो उनका प्यार ही था कि आफताब को उन्होंने बच्चे की तरह पढ़ाया। आज उन्हीं की बदौलत व बोर्ड की परीक्षा दे रहा है। फिर क्या बात हो गई?"

"किस सोच में पड़ गए, छोटे मियाँ?" अचानक महेश चौधरी की आवाज सुनकर वह चौंक उठे थे, "कहीं बाँध वाले जमीन तो नहीं बेच रहे?"

"जमीन?" अपनी पुश्तैनी जमीन के बारे में महेश चौधरी को बात करते देख पहले तो छोटे मियाँ चौंके, फिर थोड़ा डर गए थे। उन्हें याद है, उस दिन झिझकते हुए उन्होंने पूछा था, "नहीं जनाब, किसने कहा आपसे? जमीन कैसे बेचूंगा? वह तो हमारे पुरखों की निशानी है। सोचा है, आफताब जब बड़ा हो जाएगा, तब वही कुछ कर लेगा।" वह समझ नहीं पा रहे थे और क्या कहें?

"तब?" महेश चौधरी ने फूकन काका की ओर देखते हुए उनकी दाहिनी जंघा पर हाथ मारा था और ठटाकर हँस पड़े थे।

"बन गए न बुद्धू!" फूकन काका ने भी हो-हो करके हँसते हुए कहा था, "मियाँ, एकदम बुद्धू ही रह गए आप! भला हम आपको परेशान कर सकते हैं? वह भी तपेसर भाई के नाम पर? और आपने कैसे समझ लिया कि तपेसर भाई आपको लाठी लेकर ढूँढ़ रहे हैं?"

पर इस बार, हर बार का मजाक एक बड़ा सच बनकर उनके सामने खड़ा था। लोगों की तालियाँ उनके सीने पर बार-बार हथौड़े की तरह चोट पर रही थीं। उस दिन तो छोटे मियाँ को कुछ जवाब देते नहीं सूझा था, पर मन में एक डर तो बैठ ही गया था। उड़ती खबर पर यकीन तो नहीं कर सकते थे, पर जरूर कोई बात थी जो उनसे छिपाई जा रही थी।

"यह बाँध पर क्या हो रहा है?" उस दिन हिम्मत करके छोटे मियाँ ने फूकन काका से पूछ ही लिया, "कोई कह रहा था, बाँध पर मीटिंग होने वाली है? बाहर से पार्टी के कोई बड़े नेता आ रहे हैं?" उन्होंने फूकन काका की आँखों में झाँकते हुए पूछा था, "अभी तो पिछले साल ही चुनाव हुए थे। सरकार गिर गई है क्या?" वह समझ नहीं पाए और क्या पूछें?

"सरकार! शुभ-शुभ बोलिए, छोटे मियाँ!" फूकन काका के बोलने के पहले महेश चौधरी बोल पड़े थे, "किसकी मजाल है जो सरकार को गिरा दे? और आपको किसने बताया कि बाँध पर मीटिंग हो रही है?" उनके चेहरे पर घबड़ाहट के भाव आ गए थे।

"नहीं, स्कूल पर कुछ लोग आ रहे थे।" उस दिन तो छोटे मियाँ महेश की घबड़ाहट नहीं समझ पाए थे। माजरा बाद में समझ में आया। चबूतरे पर बैठते हुए उन्होंने महेश से पूछा था, "क्या बृजबिहारी बाबू आ रहे हैं?"

"नहीं-नहीं...ऐसी कोई बात नहीं है.... और हाँ...." महेश चौधरी ने घबराते हुए भी बात सँभाल ली थी, "बृजबिहारी बाबू इस बार नहीं आ रहे हैं! हरीश बाबू कह रहे थे कि वह भी कोई नेता हैं? आजकल पार्टी में कहाँ उनकी कोई बात मानता है। बड़े मंत्री जी ने तो उनसे साफ-साफ कह दिया है कि जाकर कहीं आत्मचिंतन करें! जब पार्टी को जरूरत होगी, तब उन्हें बुला लिया जाएगा।" उनके चेहरे पर वितृष्णा के भाव आ गए थे, "इस बार हरीश बाबू ने एक तेज-तर्रार युवा नेता को बुलाया है। पार्टी में आजकल उन्हीं की चलती है। आपने नाम सुना होगा - सुरेंद्र बाबू! वैसे उनका असली नाम सुरेंद्र साँधी है। हैं तो राजस्थान के, परंतु पूरे देश को अपना घर मानते हैं। सबसे उनको प्यार है। चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, सिक्ख हो या ईसाई!" पूरे विश्वास के साथ कह रहे थे वे, "यहाँ कुछ विकास का कार्य करना चाहते हैं। बड़ी मुश्किल से हरीश बाबू ने यहाँ आने के लिए उनको तैयार किया है।"

"यह तो बड़ी अच्छी बात है।" छोटे मियाँ ने कह तो दिया, पर चिंतित हो गए। वह समझ नहीं पा रहे थे, यह सब क्या हो रहा है? इसके पहले गाँव में इस तरह की कोई बात नहीं हुई थी। हर आदमी एक-दूसरे की इज्जत करता, खुले मन से बातें करता, चाहे वह किसी भी समुदाय का क्यों न हो! उनके अब्बा भी इस गाँव के लोगों की जबान और रहन-सहन की तारीफें करते नहीं थकते। और यह सब उन्हें भी इस गाँव से विरासत में ही मिला था। उनसे तो उन्होंने बस इतना ही सुना था कि इस इलाके में फिरंगियों के साथ दो-तीन सौ साल पहले कोई बड़ी लड़ाई हुई थी। इस गाँव के लोगों ने भी उसमें बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। उसी में उनके पुरखे इधर आ गए थे। पता नहीं क्यों, जब भी रउजा पर जाते, वहाँ पत्थरों से गुदा हुआ अंग्रेज कैप्टन मुनरो और नवाब मीर कासिम के बीच 22 अक्टूबर, 1764 को हुए बक्सर-युद्ध के स्मारक उन्हें बेचैन करने लगते। उनकी भुजाएँ फड़क उठतीं। चारों ओर लहलहाते हरे-भरे खेत 'उन्हें देखकर मचल उठते। उन्हें लगता, इन खेतों में उनके पूर्वजों के श्रम और संघर्ष सीना तानकर गर्व से मुस्करा रहे हैं। यह भी आश्चर्य की बात थी कि इस इलाके में मुसलमानों की अब कई बस्तियाँ हो गई थीं, फिर भी उनके परिवार ने यह गाँव नहीं छोड़ा। हाँ, उन्हीं की तरह इक्के-दुक्के और मुस्लिम परिवार आसपास के गाँवों में रहते थे, पर किसी ने सन् सैंतालिस में भी गाँव नहीं छोड़ा। पर हाल में देश जिस तरह की घटनाएँ बढ़ रही थीं, उससे सभी चिंतित थे। जब भी मिलते, चर्चा का विषय यही हाता कि अब कोई गांधी भी नहीं रहा जो उनकी रक्षा के लिए भरी भीड़ में लाठी लेकर खड़ा हो जाएगा।

संपत्ति के नाम पर छोटे मियाँ के पास कुल छह बीघा जमीन थी। बाँध के पास करीब साढ़े तीन बीघा और ढाई बीघा रउजा पर। बाँध के पास वाली आधी से अधिक जमीन बाँध ने ही ली थी। बची हुई जमीन ठीक पंचायत के

सामने पड़ती थी, जिस पर साल-भर कोई न कोई जलसा होता रहता था। उससे बड़ा कोई दूसरा मैदान गाँव में नहीं था।

‘कहीं फिर कोई बाँध तो नहीं बन रहा?’ उस दिन की बातचीत ने उन्हें चिंतित कर दिया था, ‘ढाई साल से अधिक हो गए, अभी तक बाँध वाली जमीन की कटाई का पैसा नहीं मिला। अब फिर क्या बनने वाला है?’

‘किस सोच में पड़ गए, मियाँ?’ महेश चौधरी ने टोका था, ‘घबड़ाइए नहीं, अपनी ही पार्टी के लोग आ रहे हैं, कोई फिरंगी नहीं!’ मुँह चलाते हुए उन्होंने कहा था, ‘नेताजी ने तो ठान लिया है कि देश में बचे हुए सारे फिरंगियों को निकाल बाहर करेंगे!’

‘अपनी पार्टी?’ छोटे मियाँ के मन में द्वंद्व मच गया, ‘यह महेश बाबू को क्या हो गया है? पता नहीं क्या अनाप-शनाप बोले जा रहे हैं?’ उन्होंने अपने दिमाग पर बहुत जोर डाला, पर समझ नहीं पाए, बात क्या है? और यह फूकन काका और महेश चौधरी सरकारी पार्टी में कब चले गए? महेश चौधरी को तो हरीश बाबू के साथ घूमते हुए कई बार देखा था, पर फूकन काका? मन की बात मन ही में दबाते हुए उन्होंने कहा, ‘अच्छा-अच्छा! तब तो खूब रौनक होगी?’

‘हाँ!’ इस बार फूकन काका बोले थे, ‘भाई, जो भी मेरे गाँव और देश की चिंता करेगा, हम तो उसी के साथ हैं!’

उस दिन और कुछ इस बारे में बात नहीं हुई थी। पर फूकन काका थोड़ा चिंतित जरूर थे। किस बात के लिए, पता नहीं! लौटते समय छोटे मियाँ का ध्यान बार-बार बाँध वाली जमीन की ओर चला जाता। बाँध वाली बची जमीन में से तो करीब चार-साढ़े चार फीट मिट्टी काटकर ठेकेदार ने उसे बरसाती गड्ढा बना दिया था। बरसात में वहाँ पानी जम जाता। फिर तो बच्चे उसमें कूदते फाँदते नहाते रहते या वहाँ चरती गाय, भैंस, बकरियाँ पानी पीती रहतीं।

‘गौयें सब आशीर्वाद देती होंगी छोटे मियाँ को!’ उधर से गुजरती हुई गाँव की महिलाएँ और खेत पर जाते बूढ़े कहते।

इस बीच एक-दो दिन और बीत गए, पर न ही तपेसर मास्टर छोटे मियाँ को ढूँढते हुए आए और न ही महेश चौधरी गाँव में कहीं दिखाई पड़े। उस दिन शाम में जब छोटे मियाँ आयुर्वेदिक कॉलेज की ओर से बक्सर जा रहे थे, तब अचानक सड़क की ओर से आते हुए चौधरी साहब उनसे टकरा गए। उनके साथ तीन-चार लोग और थे, पर वे गाँव के नहीं लग रहे थे। उनके कंधे पर झोले लटके हुए थे और हाथों में छोटी-छोटी लाठियाँ थीं।

‘पार्टी के लोग हैं।’ महेश चौधरी ने बताया, ‘कल सभा है न, उसी की तैयारी के लिए ये सब आए हैं। आजकल विरोधी पार्टी वाले सभा में आकर गड़बड़ी फैला देते हैं। उन्हें रोकना जरूरी है। अच्छा,’ उन्होंने चलते-चलते कहा, ‘आप कल बाँध पर सभा में जरूर आइएगा। साँधी साहब आ रहे

हैं, न।’ छोटे मियाँ उन्हें पीछे जाते देखते रहे। चौधरी साहब कहते जा रहे थे, ‘अब गाँव में कोई समस्या नहीं रहेगी। साँधी साहब सारी समस्याएँ दूर कर देंगे।’

‘सब आपकी मेहरबानी है!’ छोटे मियाँ जब तक कुछ और कहते, तब तक वे काफी आगे निकल चुके थे।

छोटे ए..... ओ छोटे मियाँ, ‘अभी छोटे मियाँ मुड़कर आगे बढ़ने ही वाले थे कि तभी पीछे से किसी के पुकारने की आवाज आई, ‘आपने कुछ सुना?’

‘अरे माधव भाई आप?’ पीछे मुड़कर देखा तो माधव पांडे लपके चले आ रहे थे, ‘क्या बात है? इतना हाँफ क्यों रहे हैं?’ ‘सरकार गाँव में पीने के पानी का एक बड़ा तालाब बनवा रही है। कल गाँ में बाँध पर उसकी घोषणा होने वाली है। हरीश बाबू, महेश चौधरी और पार्टी ऑफिस से आए कुछ लोग पंचायत घर के पास कोई जमीन देख रहे हैं।’ माधव पांडे की हाँफी अब कम हो गई थी।

‘यह तो बहुत अच्छी बात है।’ उन्होंने कहा, ‘फूकन काका के यहाँ महेश बाबू कुछ कह रहे थे।’

‘तो आपको कुछ खबर है भी या नहीं?’ माधव पांडे ने उनकी आँखों में झाँकते हुए पूछा, अचानक कुछ कहते-कहते वह रुक गए, ‘अच्छा जाने दीजिए! कहाँ जा रहे हैं?’

‘बक्सर!’ कहते हुए उन्होंने माधव पांडे से बात जानने की बहुत कोशिश की, पर वे टाल गए।

उस समय तो माधव पांडे का इशारा वह समझ नहीं पाए थे, पर जब दूसरे दिन सभास्थल पर पहुँचे तब उनका माथा ठनका। हरीश बाबू चौकी पर पालथी मारकर बैठे हुए थे। महेश चौधरी एवं फूकन काका के साथ पार्टी ऑफिस से आए वे तीन-चार लोग पता नहीं किस बात पर हरीश बाबू से बहस कर रहे थे। गाँव के कुछ युवक और बुजुर्ग उन्हें घेरे खड़े थे। उनसे थोड़ी ही दूरी पर माधव पांडे गाँव के कुछ युवकों के साथ खड़े जोर-जोर से बातें कर रहे थे। आसपास कुछ बच्चे खेल रहे थे। एक तरफ महिलाएँ आँवले के पेड़ के नीचे बैठी हुई कभी झुक के, कभी हँस के और कभी जोर-जोर से तालियाँ मारकर पता नहीं किस बात पर बहस किए जा रही थीं। भृगु गोड़ मंच सजाने में जुटा था। उसके साथ दो-तीन और लोग लगे हुए थे।

‘अरे भृगुवा S!.....’ हरीश बाबू अचानक मंच की ओर देखकर जोर से चिल्लाए थे, ‘फूलमाला लाया कि नहीं रे?’

‘हाँ, मालिक!’ भृगु ने वहीं से चिल्लाकर कहा, ‘सब तैयार है!’

‘अरे!’ अचानक हरीश बाबू की निगाह छोटे मियाँ पर पड़ी, ‘आप कब आए?’ फिर महेश बाबू की ओर देखते हुए कहा, ‘अरे, महेश बाबू बैठाइए छोटे मियाँ को! ये तो हमारे आज के विशेष महमान हैं।’

“हाँ—हाँ! आइए.....आइए, छोटे मियाँ जी,” महेश चौधरी ने लपककर छोटे मियाँ का कंधा पकड़ा था, फिर उन्हें खींचते हुए चौकी पर लाए थे, “बैठिए!” छोटे मियाँ इस विशेष सम्मान का अर्थ समझ नहीं पाए।

‘आ गए....नेता जी आ गए.....!’ तभी सड़क की ओर शोर हुआ। सबकी निगाह उधर ही चली गई। गाड़ियों का काफिला नजदीक आ रहा था। हरीश बाबू लपककर उठे थे, “चलिए! उठिए, महेश बाबू! और आप लोग,” उन्होंने पार्टी ऑफिस से आए चारों में से दो को उठाते हुए कहा, “दो मेरे साथ आइए तथा और लोग छोटे मियाँ के साथ बैठिए!”

सब लोग लपककर गाड़ी की ओर भागे थे। “सुरेंद्र सोंधी जिंदाबाद! जिंदाबाद! जिंदाबाद!!” भृगु गोड़ के साथ लोग जोर-जोर से नारे लगाने लगे थे।

“आइए.....आइए.....” हरीश बाबू मंत्री सुरेंद्र सोंधी को गाड़ी से उतारकर मंच की ओर ले जा रहे थे। पीछे-पीछे महेश बाबू थे और उन सबके पीछे गाँव के लोग। मंच के आसपास काफी लोग जमा हो गए थे।

“सज्जनों!” हरीश बाबू ने मंच पर चढ़कर माइक सँभाल लिया था, “हमारा सौभाग्य है कि देश और पार्टी के सबसे बड़े नेता सुरेंद्र सोंधी जी आज हमारे बीच हैं। इस गाँव का अहोभाग्य है कि यहाँ पधारकर उन्होंने हमें अपना स्वागत कराने का मौका दिया।” अब तक मंत्री जी उनके साथ आए कार्यकर्ता अपने-अपने आसन पर बैठ चुके थे। महेश चौधरी ने फूलमालाओं से सबका स्वागत करना शुरू कर दिया था। हरीश चौधरी का भाषण जारी था, “माननीय सोंधी जी पूरे देश को अपना घर मानते हैं। किसी का कष्ट इनसे देखा नहीं जाता। जब इन्हें पता चला कि हमारे गाँव में पानी की कमी है तो ये द्रवित हो उठे।” उन्होंने सुरेंद्र सोंधी की ओर देखते हुए कहा, “कहें न, हम आपके गाँव आएँगे ही! आप लोग तालाब के लिए जगह ढूँढकर रखिए, सरकार के पास पैसे की कमी नहीं है! आपके गाँव में मानसरोवर बनकर ही रहेगा!” हरीश बाबू थोड़ी देर के लिए ठहरे थे। महेश चौधरी सोंधी जी की बगल में बैठे उन्हीं की ओर देख रहे थे। आँखों ही आँखों में कुछ बातें हुईं, “हम गाँव के सबसे बुजुर्ग और सम्मानित व्यक्ति छोटे मियाँ के भी अत्यंत आभारी हैं।”

छोटे मियाँ अपना नाम सुनकर चौंके थे। थोड़ा गर्व भी महसूस किया, पर अगले ही पल सोच में पड़ गए, ‘क्या किया है मैंने गाँव के लिए?’ दिमाग पर बहुत जोर दिया, परंतु कुछ भी याद नहीं आया। ‘क्या बाँध के लिए जमीन की मिट्टी दी थी इसलिए? वह तो कई लोगों ने दी थी। और क्या किया है मैंने?’ बहुत देर तक वह याद करने की कोशिश

करते रहे, पर समझ में कुछ भी नहीं आया। उन्होंने फूकन काका की ओर देखा। वे ध्यान से हरीश बाबू का भाषण सिर हिला-हिलाकर सुन रहे थे।

“अब हम उन्हें मंच पर बुलाना चाहते हैं।” हरीश बाबू के छोटे मियाँ की बगल में बैठे पार्टी के कार्यकर्ताओं की ओर देखा था। दोनों उनका इशारा समझते ही उठ खड़े हुए थे, “उन्होंने गाँव के लिए जो किया है, उसे यहाँ की जनता हमेशा याद रखेगी.....” उनकी नजरें अब फूकन काका पर थी, “फूकन काका ने इसमें हमारी मदद की, बल्कि यह कहिए कि अगर फूकन काका नहीं होते तो यह काम संभव नहीं था।”

छोटे मियाँ चकित थे। उन्होंने इधर-उधर देखा, फिर मंच की ओर जाने के लिए उठने का उपक्रम किया। हाँ, फूकन काका का सिर हिलना जरूर बंद हो गया था। उन्होंने एक बार छोटे मियाँ की ओर देखा, फिर आश्चर्यचकित होकर हरीश बाबू की ओर।

“छोटे मियाँ ने आज वह काम किया है जिसे कोई नहीं कर पाया।” हरीश बाबू गाँव की जनता की जनता की ओर देखते हुए कह रहे थे, “आज गाँव में जो तालाब बन रहा है,” इस बार हरीश बाबू की नजर चौकी से उठते हुए छोटे मियाँ पर थी, “उसके लिए अपनी बाँध वाली जमीन छोटे मियाँ ने देने का वायदा किया है! वह.....”

‘धम्म! धम्म!’ खड़े होते हुए छोटे मियाँ को लगा, जैसे किसी ने उनकी छाती पर जोर-जोर से हथौड़ा मारा हो। लगा, किसी ने दोनों पाँवों में एक-एक मन का बोझा बाँध दिया हो।

फूकन काका पहले तो कुछ समझ नहीं पाए, पर जब सारी बात समझ में आई तो सन्न रह गए, ‘यह मैंने कब किया? और वह भी छोटे मियाँ के साथ? कितना बड़ा झूठ बोल रहा है हरीश चौधरी!’ उन्हें हरीश बाबू और महेश बाबू का यह छल समझ में नहीं आया कि आखिर क्या चाहते हैं ये दोनों? गाँव में तो गिनकर एक ही मुस्लिम परिवार है, जिसके बुजुर्ग महताब खान को इसी गाँव ने सत्रह सौ चौंसठ की लड़ाई में आश्रय दिया था और यह क्या हुआ कि आज उसकी सारी जमीन....नहीं! नहीं!! यह नहीं होने देंगे! वे अभी उठने को उद्यत हुए ही थे कि बाहर से आए पार्टी के दोनों कार्यकर्ताओं ने उनके कंधे को दबाकर फिर से बैठा दिया।

उधर हरीश बाबू का भाषण जारी था। बार-बार वे छोटे मियाँ से मंच पर आने का आह्वान कर रहे थे। गाँव के लोग जोर-जोर से तालियाँ बजा रहे थे। मंच पर बैठे हुए सोंधी जी ने अब अपनी करवट बदल ली थी।

, d foodh cã.k dh nfo/kk

वाल्तेयर (फ्रेंच कहानियाँ)

okVrs j ½21 uoEcj] 1694 & 30 eb] 1778½ Yld ds cks) d tixj.k ; q ds egku y[kd] ukVddkj , oank'kud FkA os vi uh iR; R; luefr] nk'kud Hkkouk rFk ukxfjd Lorark ds l eflu ds fy, fo[; kr gA dkanh mudh egkure-Nfr gA cks) d tixj.k ; q dh vU; gflr; kas ds l kfk l kfk okVrs j dh Nfr; ka, oafopkjka dk ve fjdh Okar rFk Yld hl h Okar ds iæ[k fopkj dka ij xgjk vl j iMk FkA

, d foodh cã.k dh nfo/kk dgkuh ea Yld hl h y[kd okVrs j us thou ea l [k vlg nq[k dk vk/kj D; k g\$ ml ij izu fd; k g\$ vlg , d fo)ku cã.k dsek; e l svi uh nfo/kk izdV dh gA ; g dgkuh ^tkk LVoViey* ds dFku B, d vl rVv nk'kud gkuk vPNk gS, d l rVv e[k l b vlg B, d vl rVv euq; gkuk vPNk gS, d l rVv l qj l b dks pfjrkV d jrk gA thou ea vge-D; k gS \

मैं अपनी यात्रा के दौरान एक वृद्ध ब्राह्मण से मिला जो विवेकी, हाजिर-जवाब तथा बहुत ही विद्वान था। और तो और वह बहुत धनी भी था। शायद इसी कारण वह और भी समझदार था। ना ही उसे किसी भी प्रकार की कमी थी और ना ही उसे किसी भी व्यक्ति को छलने की जरूरत ही पड़ी। उनका घर उनकी तीन बहुत ही सुन्दर पत्नियों द्वारा सुचालित था, जो रिझाने की कला में दक्ष भी थी। लेकिन जब वह अपनी पत्नियों से नहीं रीझता था तब वह स्वयं को दर्शन में व्यस्त रखता था।

उनके सुन्दर, भव्य एवं सुसज्जित घर और मनमोहक फूलवाड़ी के सामने एक वृद्ध महिला रहती थी, जो धर्मान्ध, मूर्ख और बहुत ही गरीब थी।

ब्राह्मण एक दिन ने मुझसे कहा, 'काश ! मैं कभी पैदा ही न होता।'

मैंने उनसे पूछा क्यों ? उन्होंने कहा, 'मैं चालीस साल से अध्ययनरत हूँ और इस तरह से मैंने अपने जीवन के चालीस साल गँवा दिए। मैंने दूसरों को शिक्षित किया और स्वयं ही अंधकार में भटक रहा हूँ। यह अवस्था मेरी आत्मा को अपमान और घृणा की ओर ले जाती है जिससे मेरा जीवन असह्य हो गया है। मैंने जन्म लिया, मैं जी रहा हूँ और समय बीतता चला जा रहा है किन्तु मैं यह भी नहीं जानता कि समय है क्या ? मैं स्वयं को दो पारलौकिक कालों के बीच पाता हूँ जैसा कि हमारे पूर्वज कहते थे। परलोक के बारे में मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है। मैं सोचता हूँ, मेरी संरचना पंचभूत अर्थात् पंचतत्वों से हुई है परन्तु मैं यह भी नहीं जानता कि सोच कहाँ से पैदा होती है ? यह कह पाना मेरी क्षमता से परे है कि सोच भी चेतना और पाचनक्रिया की तरह एक संकाय है या जिस तरह हाथ से पकड़ते हैं क्यों उसी तरह से दिमाग से सोचते भी हैं ? इतना ही नहीं कि मुझे सिर्फ अपनी सोच का ही कारण अविदित है अपितु मेरे लिए गति का आधारभूत भी उतना ही अज्ञात है। मैं यह नहीं जानता कि मेरा अस्तित्व क्यों है ? यद्यपि प्रत्येक दिन मैं स्वयं से इन सारे पहलुओं पर चिंतन, मनन करता हूँ। क्योंकि उत्तर अतिआवश्यक है फिर भी किसी प्रकार का स्पष्टीकरण दुर्लभ है। मैं वाचाल हूँ और सब कुछ कहने के बाद स्वयं लज्जित एवं घृणित महसूस करता हूँ।

'यह बहुत असंगत है जब मुझसे पूछा जाता है कि ब्रह्मा विष्णु के द्वारा अवतरित हुए थे या दोनों ही अनंत है। भगवान्, मेरा साक्षी है कि मुझे जरा भी ज्ञान नहीं है और यह मेरे उत्तर से साफ प्रतीत होता है। 'ओ मेरे आदरणीय स्वामी ! हमें बताइए, सिखाइए, 'कैसे पाप पूरी पृथ्वी को जलप्लावित करता है ?' मैं इससे उतना ही परेशान हूँ जितना कि मेरे प्रश्नकर्ता। मैं उनसे यह भी कह सकता हूँ कि संसार में सब कुछ श्रेष्ठ है लेकिन जो युद्ध से विनाशित और अपंग हुए हैं ना वे विश्वास करते हैं और ना ही मैं। मैं अपनी जिज्ञासा और अज्ञानता से लज्जित होकर लोगों से अपना मुँह मोड़ लेता हूँ। मैं प्राचीनतम पुस्तकों को पढ़ता हूँ और यह मेरे अज्ञानता के अधिकार को दोगुना कर देता है। मैं अपने मित्रों से

अनुवाद एवं प्रस्तुति : राजीव रंजन, मोबा. 9811976738

तर्क-वितर्क भी करता हूँ और उनमें से कुछ कहते हैं कि हमें अपने जीवन का आनंद उठाना चाहिए और दूसरों की परवाह नहीं करनी चाहिए। कुछ स्वयं को ज्ञानी समझते हैं किन्तु वे अपनी अनियंत्रित सोच में भटक जाते हैं। मैं महसूस करता हूँ कि यह मेरी दुःखी अवस्था को बढ़ाता है। कभी-कभी मैं निराशा के गर्त में चला जाता हूँ जब इतनी साधना के बाद भी यह अज्ञात है कि मैं कहाँ से आया हूँ ? मैं हूँ क्या ? मैं कहाँ जाऊँगा और क्या बनूँगा ?

एक समझदार व्यक्ति की ऐसी अवस्था ने मुझे सचमुच दुखी किया। मुझे इनसे ज्यादा तार्किक और ईमानदार कोई दूसरा व्यक्ति नहीं मिला। मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि जितना अधिक वे ज्ञान और संवेदना से प्रकाशित हैं उतना ही वे अप्रसन्न हैं।

मैं उसी दिन वृद्ध महिला के पास गया जो उनके घर के सामने रहती थी और पूछा कि आप कभी भी यह न जानकर दुःखी हुई हैं कि आपकी आत्मा क्या है ? वह मेरे प्रश्न को भी नहीं समझ पायी। उसने अपने जीवन का एक क्षण भी उन विषयों पर नहीं सोचा जो ब्राह्मण को सता रहे थे। पूरे दिल से उन्हें विष्णु के अवतारों पर अनंत विश्वास था और कभी उसे गंगास्नान करने का अवसर प्राप्त होता तो वह अपने आपको दूसरों से अधिक सौभाग्यवती महसूस करती।

निर्धन महिला के खुशी की इस अवस्था से प्रभावित होकर मैं दार्शनिक के पास वापस आया और पूछा 'क्या आप दुःखी रहने के लिए लज्जित नहीं हैं ? इस समय आपके घर के सामने एक वृद्धा विचारहीन यंत्रवत जीवन व्यतीत कर रही है और किसी भी बात की परवाह नहीं करती और खुश रहती हैं। - तुम सत्य कह रहे हो, उन्होंने कहा - मैंने स्वयं से सौ बार कहा कि मैं बहुत खुश रहता अगर मैं अपने पड़ोसी की तरह मूर्ख होता पर ऐसी खुशी मुझे अस्वीकार्य है।

ब्राह्मण के इस उत्तर ने मुझे बहुत ही प्रभावित किया और मैंने आत्मनिरीक्षण के पश्चात पाया कि मैं अज्ञानता के मूल्य पर खुशी कदापि स्वीकार्य नहीं कर सकता।

मैंने यह प्रस्ताव दार्शनिक के पास रखा और वे मुझसे सहमत हुए। यद्यपि मैंने कहा कि इस तरह की सोच में विरोधाभास है। आखिर अहम् प्रश्न है क्या ? सुखी रहना ! क्या फर्क पड़ता है कि बुद्धिमान हो या मूर्ख ? इन सबसे ज्यादा अहम् यह है कि जो लोग अपने कृत्य से संतुष्ट हैं वे अवश्य खुश हैं लेकिन जो तर्क करते हैं निश्चित है कि वे अच्छे तर्क नहीं करते। इससे यह स्पष्ट है कि अक्लमंदी को नहीं चुनना चाहिए क्योंकि यही हमारे दुःखों का कारण है। सभी मेरे पक्ष में थे तब भी मैंने पाया कि कोई भी व्यक्ति खुश रहने के लिए मूर्ख बनना पसंद नहीं करता है। इस तरह मैंने निष्कर्ष निकाला कि भले ही हम सुख की प्रशंसा कर हैं तब वास्तव में हम अक्लमंदी की ही प्रशंसा करते हैं।

ये सब सोचने के बाद मैंने पाया कि सुख को छोड़कर तर्क के पीछे भागना मूर्खता है। अन्य विषयों की तरह इस पर अभी और ज्यादा तर्क-वितर्क करने की जरूरत है।



20वीं सदी के अन्तिम दो दशकों को इतिहास में दो बातों के लिए याद रखा जायेगा। पहला – आर्थिक उदारीकरण तथा दूसरा – संचार क्रांति। जिस प्रकार 15वीं-16वीं शताब्दी में यूरोप से अन्य महाद्वीपों को जोड़ने के लिए समुद्री मार्गों की खोजों ने आर्थिक उपनिवेशवाद का मार्ग प्रशस्त किया, उसी प्रकार इन अन्तिम दो दशकों में सूचना मार्ग के आविष्कार ने आर्थिक एवं सांस्कृतिक उपनिवेशवाद के लिए रास्ता खोल दिया।

सूचना क्रांति एक जलजले के रूप में आई। भारत का मध्यवर्ग धीरे-धीरे सूचना का 'कंपन' अपने अंदर महसूस करते-करते, उस 'कंपन' की गिरफ्त में 'वाईब्रेट' (स्पंदित) होता चला गया। सूचना के इस दौर में बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अपने दरवाजे खोले और भारत सरकार ने इसे आर्थिक उदारीकरण की संज्ञा दी। आर्थिक उदारीकरण ने समाज की यथार्थ समझ को और सघन बना दिया। समाज के विभिन्न वर्गों के पारस्परिक संबंधों, संघर्षों और तनावों का स्वरूप बदलता चला गया और उसी के अनुरूप युगीन यथार्थ भी बदलता रहा।

निरंतर बदलने वाले यथार्थ को प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक व्यक्ति अपने वर्गीय बोध और वैयक्तिक संवेदनाओं के आधार पर ग्रहण किया है। इसी दौर में पुराने मूल्य समाज के विकास के साथ नहीं चल पा रहे थे और नए मूल्यों की रचना में पुराने मूल्यों की वजह से रुकावट आ रही थी। ऐसी स्थिति में जब भी तथाकथित नए मूल्यों को स्थापित करनेवाली कोई बात सामने आती तो समाज हड़बड़ी में उसे लपक लेता। इस तरह की हड़बड़ी का कारण नए राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और वैचारिक परिप्रेक्ष्य रहे। सिनेमा इसी रूप में यथार्थ का एक अंग भी है और उसमें हस्तक्षेप भी।

फिल्म एक चाक्षुष माध्यम है। जब हम फिल्म को पर्दे पर देखते हैं, तब जीवन हमें ठीक वैसा ही नजर आता है, जैसा कि हमें फिल्म में दिखया जाता है। अपनी इस शक्ति के कारण ही सिनेमा का प्रभाव किसी अन्य कला विधा के मुकाबले कहीं ज्यादा है। सिनेमा समाज के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को कई रूपों में और कई ढंग से अभिव्यक्त और प्रभावित कर रहा है। ये प्रभाव न तो

पूरी तरह नकारात्मक हैं और न ही सकारात्मक।

वर्तमान दौर उपभोक्तावादी संस्कृति की गिरफ्त में है। यहाँ 'उत्पादन-उपभोग' संबंध का बड़ा लचीला और करतबी नियम देखने को मिलता है। हालाँकि साहित्य के समाजशास्त्री "कला और साहित्य की कृतियों को सामाजिक उत्पादन मानते हैं।" इस हिसाब से कहानी की कोई किताब या उपन्यास एक सामाजिक उत्पादन है। दूसरी तरफ, फिल्म भी न केवल सामाजिक उत्पाद है, बल्कि इसका लक्ष्य भी समाज ही है; पैसा कमाने से लेकर सामाजिक संदेश देने तक। कोई रचनाकार साहित्य रचना स्वान्तःसुखाय भी कर सकता है, किन्तु किसी फिल्मकार के लिए ऐसी बात बेमानी मानी जाती रही है। ऐसे में जब कोई फिल्म निर्माता किसी साहित्यिक कृति को आधार बनाकर फिल्म निर्माण करता है, तब उसका उद्देश्य या तो साहित्यिक रचना की लोकप्रियता को भुनाना होता है या वह साहित्यिक रचना के बरक्स श्रेष्ठ मूल्यों एवं नये प्रश्नों को समाज के सम्मुख रखने का प्रयत्न करता है। फिल्मकार का उद्देश्य उपर्युक्त दोनों में से कुछ भी हो, लेकिन वह वर्तमान दौर की सामाजिक-वैचारिक-आर्थिक-राजनीतिक सघनता से प्रभावित अवश्य होता है।

इस दौर के अंतिम दशक में पहली बार किन्नरों पर तीन फिल्में प्रदर्शित हुईं – 'तमन्ना', 'दरम्यान' तथा 'दायरा'। इसी दशक में कुछ ऐसी भी फिल्में आईं, जिन्हें यदि शुद्ध कला फिल्में न कहा जा सके तो भी, उन्हें पूरी तरह व्यावसायिक फिल्में भी नहीं कहा जा सकता। 'लम्हे', 'रुदाली', 'सलाम बॉम्बे' आदि को इस श्रेणी में रखा जा सकता है।

अंग्रेजी से डब की हुई कुछ फिल्में हिन्दी में आईं और उन्होंने अपनी सफलता से फिल्मकारों को चौंका दिया। 'जुरासिक पार्क', 'गॉडजिला' तथा 'टाइटैनिक' फिल्मों को भारतीयों ने काफी पसंद किया।

इसी प्रकार कुछ फिल्में क्षेत्रीय भाषाओं से भी डब होकर हिन्दी में आईं। इनसे भी एक नई प्रवृत्ति की शुरुआत हुई।

महिला फिल्मकारों की पहचान की स्थापना इस दौर की एक विशेष प्रवृत्ति कही जा सकती है। इस अन्तिम दशक में न केवल महिला निर्देशकों की संख्या में ही वृद्धि हुई, बल्कि उनकी फिल्मों की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सराहना भी हुई। सई परांजपे की 'दिशा' एवं 'साज', तनूजा चन्द्रा की 'संघर्ष', कल्पना लाजिमी की 'रुदाली' एवं 'दरम्यान', अपर्णा

*लेखक भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू के पूर्व छात्र हैं।

सेन की 'परमा', 'सती' एवं 'मि. एण्ड मिसेज अय्यर', पामेला रूक्स की 'ट्रेन टू पाकिस्तान' और अप्रवासी महिला फिल्मकारों में मीरा नायर की 'कामसूत्र', 'मानसून वेडिंग' तथा दीपा मेहता की फिल्म 'फायर', 'अर्थ-1947', 'वाटर' काफी सराही गईं।

वर्तमान दौर का हिन्दी सिनेमा भूमण्डलीकरण, उपभोक्तावाद, बाजारवाद और उत्तर आधुनिक संदर्भों से बना और प्रदर्शित हुआ; ठीक उन्हीं संदर्भों में दर्शकों ने इन फिल्मों को पसंद-नापसंद किया। यानी, वर्तमान दौर का हिन्दी सिनेमा क्रमशः राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और वैचारिक परिप्रेक्ष्य से गुजरता हुआ आज की स्थिति में रचनात्मकता के विविध आयामों को प्रस्तुत कर रहा है।

भूमण्डलीकरण समकालीन विश्व की विशिष्टताओं में एक है। इस शब्द का प्रयोग मुख्यतः आर्थिक संदर्भ में किया जाता है। इस दृष्टि से, भूमण्डलीकरण मुक्त बाजार की स्थिति में विश्व की अर्थव्यवस्थाओं के एकीकरण की प्रक्रिया है। ऐतिहासिक दृष्टि से विश्व ने उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं सदी के प्रारंभ में भी आर्थिक एकीकरण का अनुभव किया था। लेकिन विश्वयुद्धों, आर्थिक मंदी और लोगों के आवागमन पर रोक के कारण लगभग 1970 ई. तक इस प्रक्रिया में अवरोध रहा। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने बीसवीं शताब्दी के 8वें दशक से नए प्रोत्साहनों द्वारा विकास पाया।

भूमण्डलीकरण के इस स्वभाव से भारत दो हिस्सों में बँट गया। एक लगातार आर्थिक तरक्की करता भारत, दूसरा लगातार आर्थिक रूप से पिछड़ता भारत। 21वीं शताब्दी तक भारत में 'नदिया के पार' का चंदन अपना कृषक रूप खोता चला जाता है और 'हम आपके हैं कौन' का प्रेम नवधनाढ्य वर्ग से होने के कारण सफलता के कीर्तिमान रचता चला जाता है।

सिनेमा जन्म से ही निजी क्षेत्र के हाथों में रहा है। निजी पूँजी की इस भूमिका ने फिल्मों की अंतर्वस्तु पर भी शुरु से ही गहरा असर डाला है। चूँकि आठवें दशक के बाद से पूँजी प्रधान युग खम ठोक कर खड़ा हुआ, इसलिए निवेशित पूँजी के डूब जाने के डर ने फिल्मकारों को सदैव इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे कथित जन भावनाओं का ध्यान रखकर फिल्म बनाएँ। फिल्मों में लोकप्रिय कलाकारों को रखने के साथ सतही कथानक, हास्य के छिछले प्रसंग, अनावश्यक नाच-गाने, भव्य सेट और मार-धाड़ के उत्तेजक दृश्य व्यावसायिक फिल्मों के लिए अनिवार्य से रहे हैं। नतीजतन मसाला/फार्मूला जनित फिल्में चलती कम, पिटती ज्यादा हैं। ऐसे में, साहित्य का रूपान्तरण फिल्मों में संस्कृति के पारम्परिक स्वर, साहित्यिक संवेदनाओं की चित्रानुभूति को सुखद अहसास के रूप में रखता है। फ्रांसीसी निर्माता-निर्देशक आस्तुक का कहना है कि "लिखे हुए शब्दों की तरह सिनेमा भी एक भाषा है जिसे लिखने और पढ़ने के लिए नए दृष्टिकोण की जरूरत

है।"² वर्तमान दौर की फिल्मों ने समाज और बाजार के दबाव को अपने शिल्प और कौशल से ऐसा रचा कि साहित्यिक कृति फिल्म रूपान्तरण न होकर फिल्मकार का नया सृजन लगने लगी। फिल्मकारों ने कला और रचनात्मकता के आयाम को कमोबेश अपने मुताबिक दिखाए, लेकिन भूमण्डलीकरण के दौर में व्यावसायिक सिनेमा का साहित्य से सारोकार उतना ही है, जितना कहानीपन को बचाए रखने के लिए जरूरी हो। उनके लिए साहित्य कहानीपन से अधिक कुछ भी नहीं है। और कहानी में भी बाजार के मुताबिक जो जरूरी तत्त्व हैं, केवल उनको ही शामिल करन उनका मुख्य लक्ष्य है।

भूमण्डलीकरण के दौर में हमारे यहाँ एक नई व्यवस्था विकसित हो गई है – फिल्मों के प्रदर्शन को लेकर। यह है मल्टीप्लेक्स कल्चर। यदि मनचाही फिल्म का टिकट न मिल पाए तो दूसरी, तीसरी, और चौथी स्क्रीन में भी लगी फिल्में देखने का विकल्प सामने होता है। आज फिल्म देखना एक महँगा उपक्रम है। इन सब परिस्थितियों के आलोक में साहित्य को व्यावसायिक सिनेमा से जोड़ लें तो भी, व्यावसायिक

सिनेमा इतने दबावों से बनता है कि साहित्य के साथ वह न्याय नहीं कर सकता। साहित्य से वह आधारभूत कथानक या सामग्री ले सकता है, पर पर्दे पर उसका स्वरूप बदला रहता है। तभी आज का 'देवदास' कलकत्ता से आएगा तो दर्शक पर वह प्रभाव नहीं पड़ेगा, जो उसे लंदन से वापस आता दिखलाने पर पड़ता है।

1980 ई. के बाद से व्यावसायीकरण के कारण फिल्मों से भारतीय संस्कृति गायब हो रही है। फिल्मों में सांस्कृतिक स्थलों के स्थान दुकानें और मॉलों ने ले लिया। भूमण्डलीकरण के कारण भौगोलिक दूरियाँ मिटीं, पूरी दुनिया करीब आई, लेकिन फिल्मों में इसका प्रभाव सांस्कृतिक विविधता के थोड़ा मिटते रूप में आया। साहित्य पर आधारित फिल्में ही इस दौर में भारत के सिनेमा की पहचान बचाकर रख पाई हैं।

1980 ई. के बाद साहित्य और फिल्म का रिश्ता कठोर बौद्धिकता और साहित्यिक कृति तथा फिल्म निर्माण की अंतर्वस्तु की प्रतिकूलता में उलझ कर रह गया। जबकि, इस दौर में कृति से ज्यादा सफल फिल्म रही। कोहबर की शर्त उपन्यास से कहीं ज्यादा लोकप्रियता उस पर बनीं फिल्मों, 'नदिया के पार' और 'हम आपके हैं कौन' ने अर्जित की। कारण स्पष्ट था कि औद्योगिक प्रक्रिया में व्यावसायिक दबाव के चलते फिल्मी उत्पादन को साहित्यिकता और कृति की संवेदना के बरक्स मनोरंजन के पार्श्व में तैयार किया गया। दरअसल बीसवीं सदी के अन्त और इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ के वर्षों में इतिहास ने नयी करवट ली। हमारे

सोचने-समझने और जीने के तरीके तकनीक, मीडिया तथा बाजार की शक्तियों के दबाव में बदल रहे हैं या बदल दिए जा रहे हैं। ऐसे में साहित्य और सिनेमा का पारस्परिक संबंध अपने समय, आगे आने वाले समय तथा पूर्ववर्ती समय (जिसे वैचारिक शब्दावली में ज्ञानोदय तथा आधुनिकता संज्ञा से पुकारा जाता है) की द्वन्द्वात्मकता में एक रोचक तनाव पैदा करने वाला अनुभव है।

बाजार ने उपभोक्ता संस्कृति को जन्म दिया है। उपभोग ही आज सबसे बड़ा मूल्य बन गया है। वैश्विक अर्थव्यवस्था माँग केंद्रित न होकर, उपभोग केंद्रित है। बाजार ज्यादा से ज्यादा उपभोग की प्रवृत्ति को बढ़ावा दे रहा है। शहरी मध्यवर्ग उपभोग की उद्दाम लालसा का शिकार हो गया है। बाजार के सतत् विकास का मूल कारण ही यह उपभोगवादी संस्कृति है। बड़ी कंपनियाँ रोज नये-नये उत्पादों के रूप में नयी-नयी इच्छायें पैदा करती हैं। विज्ञापन उनके महत्वपूर्ण शस्त्र हैं। हर रोज असंख्य नये-नये विज्ञापन उपभोक्ता के दिमाग पर चौतरफा हमला करते हैं। ये विज्ञापन सार्थकता और निरर्थकता की नयी-नयी परिभाषाएँ प्रस्तुत करते हैं।

बाजार एक ऐसी संस्कृति को जन्म दे रहा है, जहाँ पारंपरिक मूल्य बाजार द्वारा तोड़े जा रहे हैं और बाजार की सुविधा के अनुसार नये सिरे से पारिभाषित किए जा रहे हैं। ऐसे में एक आम भारतीय की स्थिति निर्मल वर्मा के शब्दों में देखी जा सकती है – “बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में मुझ जैसे भारतीय को कभी-कभी यह लगता है कि मैं एक ऐसे ऐतिहासिक नाटक का गूंगा दर्शक हूँ या उससे भी बदतर उसका दयनीय शिकार हूँ, जिसकी स्क्रिप्ट किसी दूसरे ने लिखी है और उस पर मेरा कोई अधिकार नहीं है।”³

क्या कारण है कि बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में जनता की रुचि एक बार फिर पारिवारिक फिल्मों की ओर मुड़ गई। इस माँग को पूरा करने के लिए ‘मैंने प्यार किया’, ‘हम आपके हैं कौन’ और ‘दिल वाले दुल्हनियाँ ले जाएँगे’ जैसी फिल्मों का निर्माण किया गया। और, ये भारतीय पारिवारिक संबंध ठीक वही नहीं हैं, जो हमारे रोजमर्रा के जीवन में अनुभूत होते हैं। ये संबंध बहुत कुछ सपनों को बेचने जैसे हैं। ये सुनहरे सपने वही हैं, जिन्हें हम उपभोक्ता के रूप में तब्दील होते हुए खोते जा रहे हैं।

भारतीय संस्कृति को चटख रंग में परोसा जाने लगा, तभी विजयदान देथा की कृति दुविधा इस युग में ‘पहेली’ बन जाती है। भारतीय फिल्मों की माँग विदेशों में ‘भारतीयता’ के इस छद्म रूप से बढ़ी। शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय का देवदास बीसवीं सदी के आखिरी दशक में इंग्लैंड रिटर्न देवदास है जो 2010 तक आते-आते ‘देव-डी’

जैसे हाई-फाई नाम से प्रसिद्ध हो जाता है।

उपभोक्ता संस्कृति के इस दौर में जो किताब बाजार में सफल हो जाती है, उसकी लोकप्रियता को भुनाने के लिए उस पर फिल्म बनाई जाती है। जैसे जे. के. रॉलिंग की रचना हैरी पॉटर पर फिल्म सीरीज बनी या जैसे मीरा नायर ने झुंपा लाहिरी की रचना नेमसेक पर इसी नाम से फिल्म बनाई, चेतन भगत की लगभग सभी लोकप्रिय रचनाओं पर फिल्में बनीं हैं। आज दुनिया में कहीं भी क्लासिक साहित्य पर फिल्में नाम मात्र ही बनती हैं। भारत में भी यही स्थिति है।

फिल्म ‘हम आपके हैं कौन’ केशव प्रसाद मिश्र के उपन्यास कोहबर की शर्त पर आधारित थी। महानगरीकरण, उपभोक्ता संस्कृति के चकाचौंधीय संस्करण के रूप में यह फिल्म 1994 ई. में प्रदर्शित हुई। इस फिल्म की सफलता यह दर्शाती है कि यह आधुनिकतावाद से आगे बढ़ा हुआ कदम था। आधुनिक जीवन शैली ने परिवारों को तोड़ा और विवाह की रस्में औपचारिकता भर रह गईं। इस फिल्म ने बाजार और उपभोग की संस्कृति में उत्सवप्रियता को पुनः आह्लादित किया। और नतीजा, इस पर डॉलरों तथा पौंडों की बरसात हुई। फिल्म व्यवसाय ने भारतीयता के मस्के के साथ उपभोक्तावादी संस्कृति के चस्के को फलने-फूलने दिया और व्यापार के नए रास्ते दिखाए। फिल्मों ने भव्य सेटों की पृष्ठभूमि, संपन्न परिवार में वायवी रिश्तों की प्रतिबद्धता, उत्कृष्ट संगीत के जरिए कथा-तत्त्व आदि का संयोजन समय के अनुरूप किया। आप्रवासी भारतीयों के बीच आदित्य चोपड़ा और करन जौहर ने शाहरुख को बढ़ा-चढ़ाकर खूब पैसा और नाम कमाया तथा भारतीयता को ‘प्रोडक्ट’ के रूप में बेचा।

कोहबर की शर्त उपन्यास पर सर्वप्रथम ‘नदिया के पार’ फिल्म गोविन्द मुनिश के निर्देशन में 1982 ई. में प्रदर्शित हुई। ‘नदिया के पार’ में मौन मुहब्बत की मिठास और ग्रामीण जीवन की रागात्मकता, फिल्म के एक-एक फ्रेम में बसी हुई है। निर्माता-निर्देशक ने लेखक केशव प्रसाद मिश्र के उपन्यास के पूर्वार्द्ध को बहुत ही कुशलतापूर्वक एक आदर्शवादी फिल्म में रूपान्तरित कर दिया है। मुंबई में पहले प्रदर्शन पर तो इसका दर्शकों द्वारा ठंडा स्वागत हुआ, लेकिन जब मध्य भारत और उत्तर भारत में इसका प्रदर्शन हुआ, तब दर्शक उमड़ पड़े। छोटी जगहों पर भी इसकी सिल्वर/गोल्डन जुबली हुई। सही अर्थों में यह ग्रामीण परिवेश की फिल्म थी, जिसमें यहाँ का जनजीवन, रस्मों-रिवाज पूरी जीवंतता और ताजगी के साथ उभरकर आया था। उपभोक्ता संस्कृति के आरंभिक दशकों में, जब रचनात्मकता के ऊपर वित्तीय पूँजी हावी हो रही थी, तब ‘नदिया के पार’ ने साहित्य और सिनेमा के सार्थक संबंध की दिशा में अग्रसर हो रहे हिन्दी सिनेमा

और साहित्य के आपसी संबंधों को मुखर किया।

“नदिया के पार’ छोटी सी साधारण कहानी पर बनी असाधारण फिल्म है। फिल्म का लोकजीवन से जुड़ा मानवीय पक्ष, रहन-सहन का स्तर, वेशभूषा, गीतों की लोकधुन, शब्द-विन्यास, सहज-सरल-सीधे संवाद और गँवई संवेदना ही इसकी शक्ति और सफलता का कारण है।”⁴ इस फिल्मी लोककथा ने जो खुशनुमा ग्रामीण परिवेश रचा और सफलता पाई, वह 1980 ई. के बाद के दौर में दूसरी फिल्म द्वारा संभव नहीं हो पायी। कारण स्पष्ट था कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में उपभोक्ता संस्कृति ने ग्रामीण परिवेश को प्रस्तुत कर वित्तीय लाभ के आसार को नहीं माना। बाजार तथा उपभोक्ता संस्कृति का प्रतिरोध करती हुई यह फिल्म कहीं-न-कहीं एक साहित्यिक फिल्म का बढ़िया उदाहरण है।

1991 ई. से देश में कई परिवर्तन हुए हैं। नियंत्रित एवं आंतरिक दृष्टि रखनेवाली अर्थव्यवस्था बाह्य दृष्टि वाली हो रही है। अधिकांश कार्यक्षेत्रों में राज्य का स्थान निजी उद्यम ले रहे हैं। राष्ट्रीय बाजार का विकास बाजार के सिद्धांतों के आधार पर विश्व व्यवस्था से एकीकृत होता है। बाजार व्यवस्था हमेशा मुनाफे की खोज में लगी रहती है। मुक्त प्रतियोगी बाजार कार्यकुशलता की गारंटी तो दे सकता है, लेकिन अनिवार्य रूप से समानता को सुनिश्चित नहीं रख सकता। इसलिए बाजार व्यवस्था में ‘इन अदृश्य हाथों’ पर अपार विश्वास विश्व को असहनीय असमानता के अनेक स्तरों की ओर ढकेल रहा है।

हिन्दी सिनेमा में उच्च मध्यवर्ग को ही अभिव्यक्ति मिल पाई। साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्मों का शिल्प भी उच्च मध्यवर्ग को लुभाने के लिए तैयार किया गया। आमोल पालेकर, सूरज बड़जात्या आदि बाजारवाद के अन्वेषण में सफल हुए और उन्होंने साहित्यिक सिनेमा की अपनी अलग भाषा का आविष्कार

किया। नौकर की कमीज, सूरज का सातवाँ घोड़ा, दामुल, मोहनदास आदि साहित्यिक कृतियाँ फिल्मी रूपान्तरण से कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं।

विजयदान देथा का कहना है कि “हिंदी सिनेमा की इस व्यावसायिकता के नशे पर हमारे यहाँ की एक कहावत सटीक बैठती है। छोटे ठाकुर जब शौच के लिए खेत-मैदान जाते थे तो उनके लोटे के पानी में अफीम मिला दी जाती थी। इस तरह बचपन से ही गुदा मार्ग से अफीम उनके शरीर में जाती थी और बड़े होकर वह उस नशे के आदी हो जाते थे। हमारे फिल्म निर्माता इसी तरह व्यावसायिकता के नशे के आदी हो चुके हैं। अभी हमने देवदास का हथ्र देखा है। इसमें जिस तरह माधुरी दीक्षित और ऐश्वर्य राय जैसी दो स्टार

हीरोइनों को लिया गया, तो सारी फिल्म उन्हीं की टक्कर में चली गई। देवदास के साथ शरतबाबू की भी हत्या हो गई।”⁵

हिन्दी सिनेमा आज के दौर में एक व्यावसायिक कला है। इसकी निर्मिति के लिए प्रचुर धन चाहिए। ऐसे में साहित्यिक कृतियों का रूपान्तरण एक पैशन और सामाजिक जिम्मेदारी भी है, ताकि आज के अफलातूनी खरीद-बेच के समय में किस्सागोई की मूल संवेदना जिंदा रह सके। ‘पहेली’ के निर्देशक ने वर्तमान दौर की बाजारवादिता में साहित्यिकता को ओछे ढंग से बचाया। लेकिन मनोरंजन के माध्यम से पैसा कमाना फिल्म निर्माण की बुनियादी शर्त भी है।

उत्तर आधुनिकता की विवेचना के क्रम में, ‘आधुनिकता’ हमारा आधार तैयार करती है। आधुनिकता के जिन विचारों से उत्तर आधुनिकता का झगड़ा है, उनमें सर्वप्रमुख हैं— तार्किकता, किसी भी तरह के भेद से ऊपर उठकर मानव-मानव में अनुभव की एकता, महावृत्तांतों की प्रमुखता, व्यक्ति की स्वायत्तता, सकलतावादी दृष्टिकोण, सार्वभौमिक सत्य की कल्पना और भाषा की पारदर्शिता। इन्हीं झगड़ों से उत्पन्न हो देवदास उत्तर आधुनिक संदर्भों में ‘देव-डी’ में परिणत होता है। तार्किकता को परे रखकर कहा जाता है कि ‘तू मुखिया को मारकर दामुल पर काहे नहीं चढ़ा रे।’ सकलतावादी दृष्टिकोण के विरोध में नौकर की कमीज उपन्यास और फिल्म बार-बार पढ़ने और देखने की अपील करती है। यह हर बार हमारे लिए विचार करने का एक नया स्पेस निर्मित करती है, जो पहले वाले स्पेस से एकदम भिन्न होता है। व्यक्ति की स्वायत्तता तथा महावृत्तांतों की प्रमुखता के विरोध में ‘सूरज का सातवाँ घोड़ा’ फिल्म का निर्माण एक महत्वपूर्ण उत्तर आधुनिक संदर्भ है। सूरज का सातवाँ घोड़ा कई घुमावदार कथानकों को लेकर चलता है। उपन्यास एवं फिल्म, दोनों में व्यक्ति की स्वायत्तता बार-बार खंडित होती है, इनमें छोटी-छोटी कहानियों के जरिए मध्यवर्ग के जीवन के विभिन्न भावों को उकेरा गया है। शमा जैदी ने धर्मवीर भारती के इस उपन्यास की पटकथा सार्थक रूप दिया है। कथा के विभिन्न मूड नायकत्व के परिवेश को कभी उत्पन्न नहीं होने देते। कहानी के अंदर कहानी की किस्सागोई शैली महावृत्तांत की अवधारणा को ध्वस्त करती है।

उत्तर आधुनिक विमर्श भारतीय-सांस्कृतिक अवधारणा में थोड़ा ढूँसा हुआ प्रतीत होता है। इसलिए जनसंचार के विभिन्न माध्यमों, जैसे टेलीविजन, अखबार आदि में मध्ययुगीन मानसिकता के धार्मिक प्रवचन, देवी-देवताओं की महिमा का गान करने वाले सीरियल्स दिखाए जाते हैं। इस पर भी, मध्ययुगीन मानसिकता के द्वन्द्व में उत्तर आधुनिक विमर्श साहित्य और सिनेमा द्वारा दलित मुक्ति, स्त्री स्वाधीनता और मनुष्य की स्वतंत्रता की पैरवी करता दिखता है।

उत्तर आधुनिकता अतिविकसित समाज के साथ संबद्ध की जाती है। ऐसी अनुकूल स्थितियाँ विशेषतः भारत के महानगरों में दिखाई देती हैं। मास मीडिया द्वारा संवेदनाशून्य बना देने वाला पॉपुलर कल्चर परोसा जा रहा है। इनके सहयोग से विकसित हुई उपभोक्तावादी संस्कृति इतिहास, चरित्र, तार्किकता, नैतिकता, मूल्य-व्यवस्था को खंडित कर रही है। यह आज के शहरी मध्यवर्गीय भारतीय समाज की सच्चाई प्रतीत हो रही है। ऐसे दौर में हिन्दी फिल्मों भी अछूती नहीं रही हैं। 'रंग दे बसंती' नव्य ऐतिहासिक विमर्श को कलात्मक रूप में प्रस्तुत करती है तो 'लगे रहो मुन्नाभाई' गाँधीवाद को पुनर्व्याख्यायित करती है। दरअसल इस तथाकथित उत्तर आधुनिक परिवेश में बीसवीं सदी के अंतिम दशक से हमारी संस्कृति मूलतः एक 'सिनेमाई संस्कृति' होती चली जा रही है।

उत्तर आधुनिक संदर्भों के कारण नक्सलवाद, आतंकवाद, सामाजिक-आर्थिक, वर्गीय चरित्र की सच्चाई आदि समस्याएँ फलक पर आना शुरू होती हैं, जो अति-औद्योगिक आधुनिकता की देन हैं। प्रकाश झा हिन्दी फिल्मों के माध्यम से 'दामुल' से लेकर 'अपहरण' तक की यात्रा को बिहार की राजनीतिक यात्रा के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। क्रमशः 'दामुल', 'मृत्युदंड', 'गंगाजल' और 'अपहरण' फिल्मों में बिहार के तीन दशकों की राजनीतिक यात्रा को दर्शाती हैं। इन सबमें राजनीति के साथ-साथ हर समस्या के मूल में कहीं न कहीं आर्थिक प्रभाव भी है। कथाकार शैवाल की कहानी 'दामुल' पर बनी 'दामुल' फिल्म दलित-पिछड़ों और सामंतों के आपसी टकराव को दर्शाती है। 1970 ई. के बाद बिहार के भूमिहीन किसान सामंतों के चंगुल से निकलने के लिए छटपटाने लगे। इसी दौर में नक्सलवादियों का प्रभाव विस्तार पाया।

इसी पृष्ठभूमि में 'दामुल' की कथा निरूपित है, जो अपने कथन, अभिनय क्षमता, अद्भुत पृष्ठभूमि के रचाव से कलात्मकता का दर्शन कराती है।

उत्तर आधुनिकता की विचारधारा से प्रभावित होकर 'नौकर की कमीज' (1999 ई.) का निर्माण मणि कौल ने किया। 'नौकर की कमीज' भाषा की पारदर्शिता के आधुनिक मानदण्ड को तोड़ती है। इस फिल्म का संवाद — 'साहब की कमीज पहनने से कोई साहब नहीं होता और 'नौकर की कमीज' पहनने से कोई ...।' 'कोई' के बाद संवाद मौन हो जाता है। 'कोई' शब्द इस दृश्य में 'हास्य' और 'तनाव', दोनों उत्पन्न करता है और गहरे अर्थ की व्यंजना करता है, जो दर्शक अपने-अपने परिवेशगत और स्वभावगत मानसिक अवस्था से ग्रहण कर सकते हैं।

फिल्म एक स्पेस का निर्माण करती है और केन्द्रीयता की अवधारणा को ध्वस्त करती है। कला माध्यम होने के साथ-साथ सिनेमा को बाजार के उत्पादन के संसाधनों और ताकतों का इस्तेमाल करके दर्शकों तक पहुँचना होता है। दर्शकों तक पहुँचने के लिए उसे जिस प्रक्रिया का इस्तेमाल करना होता है, वह प्रक्रिया वही होती है, जो अन्य उत्पादों के लिए जरूरी होती है। सिनेमा को वैसे भी आमतौर पर उद्योग की श्रेणी में रखा जाता है। इस दृष्टि से देखने पर सिनेमा एक उत्पाद है, लेकिन यह कला-उत्पाद है।

- 1 मैनेजर पाण्डेय, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृ. 124
- 2 महेन्द्र मित्तल, भारतीय चलचित्र, पृ. 2
- 3 निर्मल वर्मा, पत्थर और बहता पानी, पृ. 61
- 4 वसुधा 81, (सं.) स्वयं प्रकाश, राजेन्द्र शर्मा, पृ. 417
- 5 आउटलुक, (सं.) आलोक मेहता, सितम्बर 2007, पृ. 24

अगर मेरे हाथों में तानाशाही सत्ता हो, तो मैं आज से ही विदेशी माध्यम के जरिये हमारे लड़के और लड़कियों की शिक्षा बन्द कर दूँ। मैं पाठ्य-पुस्तकों की तैयारी का इंतजार नहीं करूँगा। वे तो माध्यम के परिवर्तन के पीछे-पीछे चली आयेंगी। यह एक ऐसी बुराई है, जिसका तुरन्त इलाज होना चाहिए।

—महात्मा गाँधी



आधुनिकता आम तौर पर नयापन, नवीनता, परंपरा की समाप्ति का मतलब है। राजनीतिक और सामाजिक संदर्भ में यह स्वतंत्रता और समानता के उद्देश्य के लिए है। हालांकि, सामाजिक और राजनीतिक आधुनिकता के प्रतिमान सांस्कृतिक आधुनिकता के रूप में तब्दील हो जाता है। यह कई भारतीयों के लिए एक बहुत ही जटिल प्रश्न हो जाता है। न तो आधुनिकतावादी और न ही उत्तर-आधुनिकतावादियों ने कभी भी ऐसे जटिल मुद्दों को उजागर नहीं किया है क्योंकि उनका अपना काम माध्यम तथा रूपवादी परंपरा के संदर्भ में केवल व्यूतपतीत है। आज वैश्विक कला या वैश्विक कला के इतिहास पर चर्चा और बहस की जा रही है। एक भूमंडलीकरण को कैसे परिभाषित करता है, अपने आप में एक समस्या है और भूमंडलीकरण के भागीदारों के द्वारा वैश्विक क्या है कि पूरी प्रक्रिया को उन पर टीके रहना/पकड़ बनाए रखना है। ग्लोबल हमेशा यूरो अमेरिकी दृष्टिकोण को परिभाषित किया गया है। भारतीय समकालीन कला के संदर्भ में यह आमतौर पर भारतीय आर्थिक नीति भूमंडलीकरण में खुलेपन के साथ भारत में आ गया और अक्सर इसे तत्कालीन कांग्रेस सरकार द्वारा नीतिगत पहल को एक मार्कर के रूप में माना जाता है। फिर भी कला निर्मिति में क्या कोई पार सीमाएं नहीं थीं? एक बात विशेषतौर पर कही जानी चाहिए की कई आधुनिक भारतीय कलाकार लगातार यूरोप और अमेरिका में कला प्रदर्शनी करते थे और आज भी करते हैं। इंग्लैंड के गर्भनाल को आज भी काटा नहीं जा सका है। प्रशंसा का प्रमाण पत्र पहले पश्चिम से प्राच्य प्राप्त किए बगैर देशी भारतीय उसे स्वीकार नहीं करते हैं। लेकिन क्या इस बात की चर्चा की जा रही है की आधुनिक पश्चिम समावेशी/सम्मिलित के लिए प्रयत्नशील रहा है जो कि उनकी सामाजिक व राजकीय परिस्थिति अनुरूप था, लेकिन इन्ही परिस्थितियों ने बातचीत करने के लिए हमेशा अपने आपको बुद्धजीवी कहलाने वाले द्विज लोगों को ही पसंद किया जो हमेशा गैर समावेशी सोच

और नीति अपनाए हुए हैं। इसलिए वे हमेशा खुद के फायदे का ही सोचते रहे। जबकि इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं दिया गया कि हमेशा 'Co-arising' = सह उपन (जो की वियतनामी समकालीन दार्शनिक Thick Nhat Hanh द्वारा प्रयुक्त शब्द है) एक सांझी संकल्पना है जो संसार के उत्थान के लिए सूचक है और गैरविकसित देश हैं उनके लिए कारगर है। पश्चिम ने इस तथ्य की अनदेखी करके अपने स्वयं अर्थव्यवस्थाओं, संस्कृति और स्वार्थ देखभाल करना पसंद किया है। पश्चिम औद्योगिक उपभोक्ता उत्पाद के संदर्भ में अधिक है। इस मामले में उपभोक्ता एक व्यक्ति है, लेकिन एक राष्ट्र नहीं हैं। विकसित देशों द्वारा किसी राष्ट्र को वस्तुरूप मान लिया है। यूरोप में जर्मनी की तरह बहुत कुछ देशों ने संस्कृति और भाषा के साथ लगातार समन्वय और रुचि दिखाई है। हालांकि भारतीय भाषाओं में रुचि नस्लीय सिद्धांतों द्वारा प्रचलन में थी। राष्ट्र की इकाई भी साम्राज्यवादी शासन के समाप्ति के बाद भी बढ़ाया सीमाओं के रूप में देखा जाता है। पश्चिमी प्रभुत्व इस प्रकार यूरोप के रूप में उन्नत, विकसित देशों में उभर, गहरा यूरोपीय साम्राज्यवाद के साथ जुड़ा हुआ है जो कि आधुनिक उत्पादन प्रक्रिया के क्षेत्र में जारी रखा गया है। लोकतंत्र और सामाजिक मुक्ति जो आधुनिकता की परियोजना बन गई और बाकी लोगों को भी वह उत्तरदायी बन गई। ब्रिटिश शासन के दौरान, गैलरी कला प्रथाओं का उद्गम एक आधुनिक पहल के रूप में देखा जाने लगा लेकिन वह कभी भी अपनी जमा हुई विरासत वर्गीकृत पदानुक्रम कभी नहीं छोड़ सकी और एक आधुनिक लोकतांत्रिक जगह के रूप में उभर नहीं सकी क्योंकि जनता का देखने का नजरिया ब्राह्मणवादी था जोकि आंशिक रूप से मिथकों का समर्थन करना था और आंशिक रूप से आश्रय हमेशा एक राक्षस की तरह मिथक परंपरा व सोच को बढ़ावा देता था। कलाकारों को जब पारंपरिक राजाश्रय लुप्त होने लगा ब्रिटिश साम्राज्य में सब कलाकार समकालीन उभरते बाजारों के साथ समझौता

*प्रोफेसर वाय.एस. अलोने, कला और सौंदर्यशास्त्र संस्थान, जेएनयू, नई दिल्ली।

करना पड़ा जोकि समय का बदलाव था। इस बात का विशेष ध्यान रहे कि छत्रपति शाहूजी महाराजा ने जो की कोल्हापुर से थे, उन्होंने कलाविद्या की प्राप्ति के लिए पिछड़े वर्ग से आनेवाले छात्रों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की थी तथा वापस कोल्हापुर आने के पश्चात् इनको आश्रय प्रदान किया। लेकिन उन्होंने कभी भी वे अपनी दरबारी चित्रकार बने रहने की बंदिश कभी नहीं रखी। उनकी समावेशता और पहुँच के विचारों का विचार स्वतंत्रत पूर्व भारत में कोई मुकाबला नहीं था। औद्योगीकरण और बड़े शहर के क्षेत्रों में कॉरपोरेट व्यवसाय घरों के उद्भव के साथ, कलाकार समुदाय के लिए पारंपरिक आश्रय लुप्त हो गया। कलाकार जीवित रहने के लिए आगे महत्वपूर्ण साधन बन देख रहे थे।

अंगीकरण की प्रक्रिया और विनियोग कला के चलते केवल रूपवादी मूल्यों को अन्य संस्कृतियों से स्वीकारना, आधुनिकतावादी दावा करने वाले कलाकारों का एक विशेष अधिकार बना औरा उन्होंने वास्तव में स्थानीय लोगों के सम्मान व न्यायपरस्ता के संदर्भ में सामूहिक प्रथा और ऐसी कला भाषा का निर्माण करना जो की पदानुक्रम वर्गीकृत विचारों को सांकेतिक करके उसकी आलोचना करे, ऐसा कभी भी नहीं समझा। क्या वैश्विक आज केवल वस्तु की वस्तुता के लिए है। 'ग्लोबल' यूरोप और अमेरिका के क्षेत्र में स्थित है। क्या वैश्विक यह यूरो-अमेरिका कला संस्थान/कलेक्टरों और संग्रहालयों से फैसला किया जा रहा है। संग्रहालय सांस्कृतिक उत्पादों/अभिव्यक्तियों घर के लिए महत्वपूर्ण संस्थानों के रूप में उभरा है, कलाकार गैलरी कला संस्थान संग्रहालय और संग्रहालयो के बीच एक महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में उभरा है। यहां महत्वपूर्ण सवाल है कि कैसे जानकारी प्रचारित की जाती है और कौन लोग मौखिक (मुखबिर) बने रहते हैं। वैश्विक गुणवत्ता कला में कैसी बनी हुई है और वो क्या है यह पश्चिम द्वारा तय किया जाना है जो कि सामग्री की सामग्रता केवल मात्र उद्देश्य होता है जो कि मूलतः पश्चिम ही तय करता है कि क्या वैश्विक है और क्या नहीं है। यह इस प्रकार पश्चिम एक निर्णायक कारक बनी हुई है। आधुनिकतावादी कला संकल्पना ने नया, नवीन माध्यमों का रूप निर्माणी के उत्पादित **Qdli** लिए पता लगाया जो कि विश्व पटल में स्वीकृत है। लेकिन महंगी, परिष्कृत सामग्री, औद्योगिक उत्पादों/औद्योगिक हुआ छवि सामग्री को कला

का माध्यम बनाया। भारतीय संदर्भ में, औद्योगिक समाज की आभा एक बहत दूर का सपना बनी हुई है और इसलिए कई स्वीकृत चेतना से परे जाना कभी नहीं होगा कि सामग्री के प्रयोजन के साथ ही इसका अर्थ प्रयोग एक पृथकता है।

कला भवन और दीर्घाओं वैश्विक प्रभाव तंत्र के एक भाग के रूप में भारत में परिचालन बन गए हैं। संस्थापित कला दीर्घाएं पारंपरिक संग्राहक और आश्रयदाता को नियंत्रित करता है। दीर्घाओं ने विशिष्ट कलाकारों का शो उनके व्यवसाय को चलाने के लिए शुरू कर दिया। यह संरक्षण के पैटर्न में बदलाव बहुत महत्वपूर्ण बन गया। कला दीर्घा प्रदर्शनी के पटल की स्वतंत्रता केवल विशिष्ट कुछ के लिए और विशिष्ट कुछ द्वारा एकाधिकार हो जाता है। गैलरी अकेले कैसे कलाकार की जरूरत को स्थापित करने की जरूरत तथा करने के लिए सारी प्रक्रिया और तंत्र का फैसला करती है। हालांकि लेकिन उदार कुछ दीर्घाओं के चलन से कुछ नए कला आश्रयदाता उभर के आए जिसके कारण कला दीर्घागण का एकाधिकार तोड़ दिया है। एक समय जब कुछ मुंबई में कला दीर्घाओं (जैसे गैलरी सात और साक्षी) कई युवा नव चित्रकारों और बड़ौदा से पढ़े हुए विद्यार्थियों को आश्रित करना शुरू किया गया था। लेकिन ऐसे प्रयास बहुत ही कम बने रहे। अकेले दीर्घाएं तय करती है की क्या समकालीन है और उनका विचार एकमात्र वाणिज्यिक आधार से पसंद होता है। बहरहाल, उभरते अंतर्राष्ट्रीय रुचि के साथ, बातें अलग ढंग से, एक अलग पहल शुरू हुई। विपणन कला कार्यों की चिंता प्रधान बन गयी है और कलाकार कभी नहीं जान पाया की उसकी कलाकृति कहाँ जा रही है। जब जापान एक महत्वपूर्ण बाजार और बिजनेस हाउस के रूप में उभर रहा था तब यूरोप व अमरीका जापान के समकालीन कला में रुचि ले रहा था, लेकिन आज पश्चिम की ओर से कोई इस प्रकार की जिज्ञासा की क्या मौजूदा जापान में क्या हो रहा है यह पता करने के लिए नहीं है। यह ऐसी बात भारत और चीन के संदर्भ में भी लागू होती है। कैसे प्रवासी और विस्थापित भारतीय आश्रय तथा बढ़ावा देने में अग्रसर रहता है यह अपने आप जिज्ञासा व शोध का विषय है क्योंकि यही लोग यूनाइटेड किंगडम में जातिगत भेदभाव कानून बाधित करने के लिए जी तोड़ प्रयास किया है और सांस्कृतिक विरासत की महान परंपरा के रूप में उनकी जातिगत प्रथाओं की रक्षा करने में

अग्रणीय भूमिका निभाते रहे हैं। भारत में घरेलू बाजार/संरक्षण मजबूत है और बाहरी बाजार पर पूरी तरह निर्भर नहीं हैं। वैश्वीकरण के लाभार्थी जो स्वयं को मजबूती से कला की दुनिया में स्थापित कर रहे हैं, यह बेहद गलत स्थिति है कि शायद ही कोई भी चेतना भारतीय समाज की समस्याओं की प्रदर्शनी 'place for People' अपने आपको केवल मात्र मानवी आकृति चित्रण के माध्यम से वैधता प्रस्तावित करने में सफल रहा है। लेकिन वह कभी भी किसी भी प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष राजनीतिक आंदोलनों का हिस्सा नहीं बना है। कुछ कलाकार मार्क्सवादी राजनीतिक समूह से अनुपालित होने का दावा किया है, यह वर्ग मापदंडों के सम्मेलित लक्षण के भीतर कार्य किया है। इस प्रकार से अभिव्यक्ति के दूसरे समूह के लिए पूर्ण उपेक्षा होती है या भारतीय समाज को पेश आ रही समस्याओं/मुद्दों का चित्रांकन करने के लिए कोई रचनात्मक पहल नहीं है। इस तरह के चित्रकारों celebrative मोड/स्थिति में बने रहे और समस्याग्रस्त के रूप में जाति और लिंग के मुद्दे की पहचान कभी नहीं। आधुनिकतावादी परियोजना इस प्रकार मात्र ब्राह्मण संकेतक में अपनी सार को कम करने के ब्राह्मण विचार प्रक्रिया आधुनिक के उदारवादी परियोजना में प्रस्तावित करके उसे बदीश के रूप में चलन शुरू किया। स्वयं शैलीत रूप भाषा के अलग-अलग आवाम खोजे जा रहे थे और प्रचलन में भी थे लेकिन इसमें मौलिक कठोर परिवर्तन नहीं किये गए हैं। वर्ग-कलाकार शायद ही दलितों के साथ खुद की तादात्मता कर सकें। यह समकालीन अभिव्यंजना में कोई क्रांतिकारी बदलाव बनाने के लिए बेहद मुश्किल हो गया। नतीजतन यह बहुत ऊपरी बने रहे। यथा स्थिति बनाए रखना और उसका रखरखाव करना तथा नवीन चेतना उत्पन्न करने के लिए किसी भी नएपन की धारणा करने का प्रयास मात्र पूर्णतः शून्य था। घरेलू कला चेतना इतनी ब्राह्मणी चेतना थी कि संग्राहक तथा कला भवनों ने पारंपरिक चेतना या रूपवाद की आधुनिकता को ये बदलाव लाना या उत्तर-आधुनिक कला चेतना जो कि ब्राह्मणीय है उसको नष्ट करने का प्रयास मात्र शून्य था। जो भी कलाकार थे और हैं वे सारे पारंपरिक रूप से वही घरेलू तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हैं। वैश्वीकरण के प्रभाव के साथ, कलाकारों को भी पश्चिम की उत्तर आधुनिकता उम्मीदों पर प्रतिक्रिया और कला दीर्घाएं भी पश्चिम की उम्मीदों पर खरा उतरने के लिए खुद को

समायोजित करना शुरू कर दिया। कुछ पश्चिमी सोच की एकाधिकार के संकल्पना के लिखे आलोचक हुए लेकिन यही लोग वैश्वीकरण वस्तु उपभोगता तथा भौतिक लाभ के सबसे बड़े लाभार्थी हैं। आश्रय/संरक्षण कला की दुनिया में महत्वपूर्ण कारक है। कोई कला आश्रय के बिना जीवित नहीं रह सकती है। वे जो राजनीतिक रूप से सही मानते हैं और समाज से जुड़े होने का साहस करते हैं उनके लिए जीवित रहना बहुत मुश्किल हो गया है। ऐसे प्रयासों के लिए कोई स्वतंत्र रूप से कलाकार रहना बहुत मुश्किल है जबकि कुछ के नौकरी से समर्थन प्राप्त करके जीवित रह रहे हैं वरना ऐसे कलाकारों को कोई उत्साहित नहीं करता है।

गैलरी कला उत्पादन को नियंत्रित करने में एक बहुत ही निर्णायक भूमिका निभाने लगी है। आज यह उत्पादन की प्रक्रिया को नियंत्रित करने के लिए एक एकल इकाई के रूप में उभरी है। जब तक गैलरी किसी भी प्रकार के कला को बढ़ावा देता है, और कला उत्पाद को संवाद करने के लिए बहुत विशिष्ट अलंकृत अंग्रेजी भाषा को लिखने वाले आलोचकों को काम पर रखते हैं जो कि जबरन कला की केवल गुणगान लिए होता है। कला नियमन के नियंत्रण व संचालन गैलरी और कला पारखियों के हाथों में पूरी तरह से है तथा उनकी सनक और इच्छाओं पर पूरी तरह से निर्भर हैं। गैलरी कलाकार के लिए एक प्रदर्शनी की जगह के रूप में प्रस्तावित है लेकिन उसकी कमान और समर्थन कि कोई और अधिक स्वतंत्रता नहीं है।

स्तर और पैमाने हर रोज के कलाकृति नियम हो गये हैं। कलाकृति के पैमाने प्रदर्शित पटल पर हावी हो गये हैं। मुख्य रूप से तीन आयामी कला काम को समकालीन परिभाषा से जोड़ा गया है, इस प्रकार की मूर्तियों के प्रतिष्ठानों, तथा तैयार सामग्री से बनी कलाकृतियों का चलन रोजमर्रा हो गया है। नृविज्ञान की संकल्पना, बनाने वाले की पूछताछ की संकल्पना को बुद्धिवादी दृष्टि से प्रश्न उपस्थित करता है क्योंकि नृविज्ञान समूह के एकजुट होने को ज्यादा प्रधानता देती है ना कि किसी व्यक्ति विशेष को, लेकिन असली व्यवहारिक दृष्टि से 'बनानेवाला' ही एकमात्र चिंता होती है। और इसलिए कला संग्रहक किसी कलाकार की कलानिर्मिती में कौन से शिल्पकार विशिष्ट कार्य करने के लिए किराए पर लिया था, यह पता करने के लिए दिलचस्पी कहीं नहीं

दिखाते हैं। 'नृविज्ञान' कला को हमेशा संदर्भ के रूप में बनाने वाले कलाकार के प्रति समर्थनात्मक चिंतन नहीं करता लेकिन बिना बनाने वाले के नाम के बिना या कलाकार के नाम के बगैर संग्राहक की कला निर्मिति को स्वीकृति नहीं होती। कलाकार की निर्भरता अपनी वैचारिक मंच से यह वास्तविक बनाने के लिए निवेश की भारी राशि की आवश्यकता होती है इस तथ्य के लिए वे संपूर्ण रूप से गैलरी पर निर्भर होता है। क्योंकि गैलरी पर पूरी निर्भरता होती है। पैमाने, मंच, monumentality, सभी गैलरी के साथ बड़े पैमाने पर चर्चा की जाती है। गैलरी सब कुछ एक एजेंसी होने के नाते एक उत्प्रेरक सेवा प्रदाता के रूप में कार्य करती है, और क्या समकालीन है और क्या नहीं है उसका आदेश प्रदान करती है। कोई भी एकमात्र ऐसा प्रयास नहीं हुआ है जो कि राजनैतिक रूप से कला निर्माता को बढ़ावा दिया है जोकि ब्राह्मणवादी चेतना को झंझोड़ सके। ऐसी कोई भी कला निर्मिति नहीं होती जिसे उत्तर-आधुनिकता का दर्जा प्राप्त नहीं होता और जो असमानताओं, अंधविश्वास, देशी आबादी

का विस्थापन, वर्गीकृत पदानुक्रम में महिलाओं की स्थिति की चेतना का सवाल करने के लिए किसी भी सूचक से रहित है।

बहुधा ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन और मध्ययुगीन कला काम लेने और प्राप्त करके संग्रहालय बनाना मुश्किल हो जाता है। जब कि समकालीन संग्रहालय बनाना आसान व सरल है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, पश्चिम के मुखबिर कौन हैं ? यह वे खुद ही ऐसे लोग हैं जो क्या अच्छा है, बुरा है, बुद्धिमान है, समकालीन है या यहां तक की बुद्धिमान है जब कि ये वही लोग जो सबसे बड़े व्युत्पन्नकारी हैं और अपनी पकड़ यथास्थान बनाए रखना चाहते हैं, और वही लोग उत्तर-उपनिवेशी धारा का रचनात्मक आलोचकता निर्माण करने में असमर्थ है। कलाकृति की स्वायत्तता कलाकार तथा दर्शक के मन में रहती है लेकिन वास्तविकता में गैलरी ने इस प्रकार के स्वायत्तता को पूरी तरह से समाप्त कर दिया है और 'निर्माण' व 'सेवन या खपत/उपभोग की भूमिका निभा रहा है जिससे स्वायत्तता संपूर्ण रूप से नष्ट तथा वर्गीकृत पदानुक्रम में एकीकृत हो गयी है।

विदेशी भाषा के माध्यम के जिसके जरिए कि भारत में उच्च शिक्षा दी जाती है हमारे राष्ट्र को हद से ज्यादा बौद्धिक और नैतिक आघात पहुँचाया है। जिन विषयों को सीखने में मुझे चार साल लग गये अगर अंग्रेजी के बजाय गुजराती में मैंने पढ़ा होता तो उतना मैंने एक ही साल में आसानी से सीख लिया होता। इस अंग्रेजी माध्यम ने मेरे और मेरे कुटुम्ब के बीच, जो कि अंग्रेजी स्कूलों में नहीं पढ़े थे, एक अगम्य खाई कर दी है।

—महात्मा गाँधी

dk0; I tu

xak i l kn foey dh dfork, j



iy; ds utnhd

अभी घबराने की ज़रूरत नहीं
हम प्रलय के नज़दीक नहीं हैं।
पर हमारे भावी वंशज की होंगे वे
प्रलय के नज़दीक
हमने उस नजदीकी में किया है बेजोड़ इजाफ़ा
पिछली दो सदियों में
और अब इन कुछ बरसों में
सदियों में भी आगे बढ़ आए हैं।
अपने वंशजों भावी वंशजों की उन्न करने में
हमारी भागीदारी असंदिग्ध
हमारे ही द्वारा जमा किया गया कूड़ा
(न्यूक्लीयर से हार्डवेयर और छोटे स्तर के प्लास्टिक)
और न जाने कितने दूसरे किस्म के
नुकसान पहुँचाने वाले रसायन
जो गंदला कर रहे हैं विश्व का पानी
यह तो है सिर्फ़ हिमटीलों का ऊपरी शिखर
नीचे हमने क्या-क्या गोपनीय किया
वह ऊपर आसमानों को भेद रहा है चुपचाप
हम भविष्य के हत्यारे हैं
प्रलय को नज़दीक से नज़दीक लाने वाले
प्रलयवाही विज्ञान के जनक
हमारे गण हैं आतंकवादी...
वे खेल ही रहे हैं खूनी होली
चारों तरफ़
बेशक
अभी घबराने की ज़रूरत नहीं
नहीं हैं हम प्रलय के नज़दीक
पर प्रलय हमारे सिरहाने है
यह सच है।

gok ea ffkj

हवा में यानी
शून्य में
थिर है धरती
और मैं
नेताओं की हवाबाजी में
जीवित हूँ मैं
लगभग मरणासन्न
इस धरती की कैद में
आज़ादी के लिए कराहता
मैं यही हूँ
शून्य के थिर
पृथ्वी में
बदल रही है पृथ्वी
और पृथ्वी के अर्थ
भूमि हथियाने के लिए
पुराने युद्धों की जगह
नये तर्कों का जाल
फैला है हवा में
हवाबाजों का करतब
मैं यही हूँ
देख रहा हूँ बदलता क्रम
जैसे सब कुछ वैसा ही हो

कवि जेएनयू के भारतीय भाषा केंद्र से प्रोफेसर के पद से सेवानिवृत्त हुए हैं।

पिछले सिलसिलों की तरह
हवा के शून्य में गतिहीन
जबरन जबरन मुक्तियाँ
मुक्ति के दरवाज़ों पर
कीलती हैं नई पाबन्दियाँ
आज़ादी है धर्म को
कुकर्म को आज़ादी है सतत
चारों तरफ
हवा में नारे हैं नारे ही नारे
और शून्य में
थिर है धरती और मैं।

rkuk' kkgkadk vUr

हर शताब्दी में होता है तानाशाहों का अन्त
गरज कि अब होंगे वे नेस्तनाबूत
बदल लेते हैं वे शकल
बदलते हैं पोशाकें
मेरी सदी में वे धर्म को मजबूत कवच समझ
धर्म के रास्ते आए
वे अपने शौर्य से
विस्मित करने की कला में पारंगत
वे जन दुख में
सतत दुःखी
अपनी विरदावली के लिए
चुन डालते हैं वे कवि

और कविगण... बौद्धिक
पंक्तिबद्ध रहते हैं नव सृजन में
नमन में
पकड़ाते हैं वे नौसिखियों को
पीली किताब
लाल किताब और हरी किताब
रंग-बिरंगे आकारों की
विरुद्ध गाथाओं का प्रचार
करते हैं प्रचारक। कर रहे हैं अभी
अभी-अभी प्रबुद्ध जन
रच रहे हैं नया आश्वस्ति शास्त्र

वे वंश वाद के जरिए
समझते हैं पकड़ का तिलिस्म
और न जाने कैसे
जनधक्के में
टूट जाती है मजबूती
वे फिर साधारण में रूपांतरित होकर
अपने अगले जन्मों में
क्या
आएंगे
आएंगे फिर

क्योंकि हर सदी में
होता है
होना है तानाशाहों का अन्त।

Hkkj rh; Nf'k vkj efgyk ; kxnku

डॉ. सत्येन्द्र कुमार*



Bylkskadks txkus ds jkLrsea; g t: jh
gSfd nsk dh efgyk, alk tkxr gkA , d
ckj vxj ostkxr gkstk, ah rksifjokj
Hkh vkxs c<skj xkp Hkh vkj nsk Hkp

— जवाहरलाल नेहरू

भारत में यह आम धारणा है कि कृषि एक कठिन और श्रमसाध्य कार्य है। इसलिए यह पुरुषों के लिए ही उपयुक्त है, न कि महिलाओं के लिए, परन्तु यह सत्य नहीं है आंकड़ों पर यदि गौर करें तो कम ही लोग इस तथ्य और सत्य से अवगत होंगे कि कृषि में लगने वाले कुल 53 प्रतिशत श्रमिक हिस्सेदारी में 43 प्रतिशत योगदान महिलाओं का होता है। बीजों के रोपण, पौधों के रोपण, फसल की कटाई, खरपतवार की सफाई सहित कई कामों में महिला श्रम का योगदान तुलना में पुरुष से कहीं ज्यादा है। वास्तव में यह कई विकासशील देशों की सत्यता है।

जो हाथ बच्चों को पालने में झुलाते हैं, आज ही नहीं पिछले कई दशकों से वह हल भी चला रहे हैं, यहाँ 'मदर इण्डिया' फिल्म की याद आ जाती है। आज भी समाज महिलाओं को किसान के रूप में नहीं देखता है और उन्हें जमीन के मूल स्रोतों से दूर रखा जाता है जैसे कृषि सुरक्षा उत्पाद, बीज, धन की व्यवस्था आदि। खेतों में थका देने वाली कमरतोड़ मेहनत के अलावा परिवार का ध्यान रखने की दोहरी जिम्मेदारी महिलाओं की उत्पादन क्षमता को प्रभावित करती है। कृषि के विभिन्न तौर-तरीकों पर नज़र रखने के दौरान अक्सर इस बात की अनदेखी कर दी जाती है कि महिलाओं को घर में बच्चों के स्वास्थ्य का भी ध्यान रखना होता है।

एक गैर सरकारी संगठन ओक्सफेम इण्डिया द्वारा हाल ही में जारी की गई फ़ैक्टशीट इस बात की ओर इशारा करती है कि कृषि और इससे जुड़े कार्यों में लगभग 17 करोड़ महिलाएं हमारे भोजन का अस्सी प्रतिशत और डेयरी उत्पादों का नब्बे प्रतिशत उत्पादन करती हैं। लेकिन उनके पास केवल 13 प्रतिशत सम्पत्ति का अधिकार है। तथ्य इस बात की तरफ भी इशारा करते हैं कि महिलाएं कृषि के मौसम में पुरुषों के 1860 घण्टों की तुलना में तकरीबन 3,300 घण्टे काम करती हैं। इसका मतलब है कि वे पुरुषों से ज्यादा काम करती हैं। हास्यास्पद रूप से किसानों की जो छवि हमारे मन

*लेखक जेएनयू में प्रलेखन अधिकारी हैं।

में बनाई गयी है उसका आधार यह नहीं है कि खेतों में काम कौन ज्यादा करता है, बल्कि इसका आधार यह है कि जमीन का मालिकाना हक किसके पास है।

ऐसे बहुत सारे सामाजिक बंधन हैं जो कृषि क्षेत्र में महिलाओं के सशक्तीकरण में बाधक हैं। ऐसे कानून महिलाओं के सशक्तीकरण की राह में बाधा हैं। जो उन्हें जमीन के मालिकाना हक या वंशानुगत तौर पर इसमें अधिकार पाने से या दूसरे उत्पादक स्रोतों का अधिकार पाने से रोकते हैं। ये कानून उन्हें अपने द्वारा उत्पादित की गई वस्तुओं पर पूर्ण नियंत्रण से रोकते हैं। जमीन के अधिकारों में असमानता भी एक महत्वपूर्ण कारण है, जो महिलाओं के सशक्तीकरण को रोक रहा है। विकासशील देशों में महिलाओं के पास पुरुषों की तुलना में कम जमीनों के अधिकार हैं। इसके अलावा कई बार यह मालिकाना हक भी कम समय के लिए होता है। पुरुषों की मौत के बाद उनकी सम्पत्ति का अधिकार ज्यादातर परिवार के पुरुष सदस्यों के पास ही जाता है न कि उसकी पत्नी के पास। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि उन्हें जमीन के मालिकाना हक के अलावा दूसरे अन्य काम सौंप दिये जाते हैं।

'ग्लोबल फोरम ऑन एग्रीकल्चर रिसर्च' द्वारा 2012 में आयोजित 'विमिन इन एग्रीकल्चर' नामक वैश्विक सम्मेलन के दौरान यह बात कही गई कि अपने पारिश्रमिक पर भी महिला श्रमिकों का अधिकार नहीं है। महिलाओं की समाज में ऐसी स्थिति की वजह से ही परिवार समुदाय, कृषि क्षेत्र एवं अन्य स्थानों पर वे निर्णयकर्ता की स्थिति में नहीं हैं। महिलाओं को इस बात का अधिकार नहीं है कि वह अपनी बात रख सकें या 'नेशनल पॉलिसी मेकिंग फोरम' में भागीदारी कर सकें। इसके अलावा महिलाओं के ज्ञान को लेकर भी अपमानजनक व्यवहार किया जाता है।

एमएओ ने "द स्टेट ऑफ फूड एण्ड एग्रीकल्चर" के 2010-11 के संस्करण में यह कहा था कि अगर ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं को भी जमीन, तकनीक, आर्थिक सहायता और शिक्षा के अधिकार पुरुषों की तरह ही मिलें तो कृषि उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है, जिससे भूखे लोगों की संख्या में 12 से 18 करोड़ तक की कमी लाई जा सकती है। इसके अलावा यह रिपोर्ट इस तरफ भी इशारा करती है कि विकासशील देशों में महिलाओं को भागीदारी देकर 20-30 प्रतिशत फसल

का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। अब समय आ गया है कि महिला सशक्तीकरण की दिशा में कठिन परिश्रम को कम करने के लिए कृषि में नवीनता लायी जाय और महिलाओं को बाजार से जोड़ने का प्रयास हो। परिवार के भीतर भोजन की गुणवत्ता में महिलाओं की भूमिका बढ़ाने की जरूरत है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के तत्त्वावधान में डायरेक्टरेट ऑफ रिसर्च ऑन वूमन एग्रीकल्चर की स्थापना करके भारत ने संस्थागत अनुसंधान के क्षेत्र में बढ़त हासिल की है। वर्ष 2010 में भारत सरकार ने महिला किसान सशक्तीकरण की दिशा में “महिला किसान सशक्तीकरण परियोजना” की घोषणा की थी। इस योजना की घोषणा उत्पादन स्रोतों या उससे जुड़े अन्य मसलों पर महिला किसानों के अधिकारों पर केन्द्रित थी। इसके अलावा अन्य कई प्रयास भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा किये जा रहे हैं। महिला किसानों के आर्थिक सशक्तीकरण के लिए टमाटर की गुणवत्ता सुधारने के लिए ट्रेनिंग मॉड्यूल, फ्रूट प्रिजरवेशन, वर्मीकम्पोस्ट, बायोफर्टिलाइजर का उत्पादन, मशरूम की खेती, डेयरी मैनेजमेंट जैसे क्षेत्रों में प्रयास किये जा रहे हैं, वहीं कृषि में ऐसी तकनीक के इस्तेमाल को बढ़ावा देने का प्रयास किया जा रहा है जिससे महिलाओं को ज़्यादा आसानी हो।

कृषि क्षेत्र में महिलाओं की उत्पादकता बढ़ाने के लिए जगह-जगह ट्रेनिंग कैम्प भी चलाये जा रहे हैं। निजी-सार्वजनिक सहभागिता के माध्यम से इस तरह की तकनीक को और बढ़ाने की आवश्यकता इस नवगठित सरकार की है जो महिला और पुरुष दोनों के लिए ही कृषि फार्म में मददगार साबित हो सके। इस बात की भी आवश्यकता है कि उन सामाजिक आयामों की तरफ भी ध्यान दिया जाए जिससे महिलाओं की इस प्रक्रिया में भागीदारी को और बढ़ाया जा सके। इस बात की विशेष आवश्यकता है कि महिलाओं के पास धन और बैंकिंग के अधिकार हों, इसी सन्दर्भ में मनमोहन सिंह सरकार ने भारतीय महिला बैंक बनाकर एक सराहनीय कार्य किया था जिससे महिलाओं को उनकी आवश्यकतानुसार ऋण कम ब्याज पर मिलेगा।

इस नवगठित सरकार ने प्रधानमंत्री जन धन योजना (पीएमजेडीवाई) के तहत मिलने वाली सुविधाओं के दिशानिर्देश

तय कर दिये हैं जिसमें प्रत्येक खाताधारक महिला के लिये तय तीस हजार रुपये, जीवन बीमा और साथ में दुर्घटना बीमा देने का प्रावधान केवल उन जरूरतमन्द महिलाओं को ही मिलेगा, जिन महिलाओं को सरकार की ओर से इस तरह की कोई भी सुविधा उपलब्ध नहीं है उन्हीं को इस योजना के अन्तर्गत जीवन बीमा का लाभ मिलेगा।

प्रधानमंत्री जन धन योजना के अन्तर्गत आजकल देश की लगभग समस्त सरकारी बैंकों में खाते खोले जा रहे हैं। दिशा निर्देशों के अनुसार इसका लाभ केवल उन्हीं महिला बैंक खाता धारकों को मिलेगा जिनका खाता 15 अगस्त, 2014 से 26 जनवरी, 2015 के मध्य खुलेगा। यह लाभ परिवार की केवल मुखिया महिलाओं को या सदस्य महिलाओं को प्राप्त हो सकेगा। यह सुविधा परिवार के केवल एक ही सदस्य को मिलेगी। जीवन बीमा का लाभ सिर्फ प्रारम्भ के पांच वर्षों तक ही मिलेगा।

प्रधानमंत्री जन धन योजना के अन्तर्गत प्रत्येक परिवार को खाते खोलने हैं। देश के समस्त परिवारों का कम से कम एक मौलिक खाता (बेसिक एकाउन्ट), होना चाहिए, जिसे आधारकार्ड से जोड़ा जा रहा है, इस खाते में छह महीने तक सन्तोषजनक लेन-देन होने पर ही “रुपे डेबिट कार्ड” जारी किया जा रहा है, जिसमें खाता धारक महिलाओं के लिए पांच हजार रुपये तक ओवर ड्राफ्ट सुविधा एवं एक लाख रुपये तक दुर्घटना बीमा शामिल होगा। यह कदम भी महिला आर्थिक सशक्तीकरण के दृष्टिकोण से प्रधानमंत्री द्वारा एक अच्छी पहल है जो महिला सशक्तीकरण की दिशा में सराहनीय कार्य है जो भविष्य में प्रेरणादायक सिद्ध होगा।

इस सबके लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण को अपनाए जाने की आवश्यकता है। इससे नीतियों में संस्थागत बदलाव और महिला किसानों का सशक्तीकरण किया जा सकेगा। वर्तमान समय में जरूरत इस बात की है कि महिलाओं को बाजार, संस्थान और डिलीवरी सिस्टम में समान मौके उपलब्ध कराए जाएं, जैसा कि पं. नेहरू ने कहा था कि लोगों के जगाने के रास्ते में यह जरूरी है कि देश की महिलाएं भी जागृत हों। एक बार अगर वे जागृत हो जाएंगी तो परिवार भी आगे बढ़ेगा, गाँव भी और देश भी।

I kfgR; ea l ekt dh [kkt dk vFk

धीरेन्द्र कुमार*



साहित्य में समाज की खोज का प्रश्न समाजशास्त्र का अंग है। इसमें धर्म, जाति, सामाजिक धार्मिक संस्थान, सामाजिक समुदाय और सामाजिक भौगोलिक परिवेश का अध्ययन और विश्लेषण किया जाता है। साहित्य के समाजशास्त्र में केवल कृति की व्याख्या ही नहीं की जाती बल्कि सामाजिक अस्मिता की पहचान या फिर सामाजिक मूल्यों की खोज भी होती है। इसलिए साहित्य का समाजशास्त्र एक व्यापक सामाजिक प्रक्रिया ही नहीं बल्कि साहित्य के स्वरूप की पहचान भी कराता है।

अगर सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालकर देखें, साहित्य में समाज का क्या रूप उभरता है और अर्थवत्ता के स्तर पर उसके क्या माइने हैं? यह एक विचारणीय प्रश्न है। आदिकालीन साहित्य में समाज की जो स्थिति थी वही स्थिति भक्तिकालीन या रीतिकालीन साहित्य में नहीं होगी क्योंकि जब परिस्थितियाँ बदलती हैं तब देशकाल और वातावरण में परिवर्तन आना स्वाभाविक है।

भक्तिकालीन साहित्य की अगर बात करें तो कबीर जहाँ समाज में व्याप्त रूढ़ियों, कुरीतियों और आडम्बरों पर कुठाराघात करते हैं। हिन्दू मुस्लिम दोनों वर्ग के लोगों को इससे मुक्त होने की बात करते हैं। जायसी मुस्लिम होकर भी हिन्दू घराने की कथा कहते हैं। सूरदास कृष्णकाव्य के माध्यम से सम्पूर्ण ब्रज प्रदेश की संस्कृति का चित्र उकेरते हैं तो तुलसीदास अपने काव्य में लोकमंगल ग्राहस्थ और समन्वय की भावना की स्थापना करते हैं। वह 'रामचरितमानस' के माध्यम से व्यापक स्तर पर अपने समय के समाज का वर्णन करते हैं। मीराबाई राजकुल की वधू होने के बावजूद अपनी कविता के द्वारा राजस्थान के सामंतवादी समाज को चुनौती देती है और राजभवन को त्यागकर साधु-संन्यासियों का जीवनयापन करती है। जाहिर है कि मीरा का उस समय यह एक क्रांतिकारी कदम था। जिसकी बानगी पेश कर मीरा ने सम्पूर्ण स्त्री जाति पर हो रहे शोषण का विरोध किया।

सामान्यतः यह देखा जा सकता है कि साहित्यिक रचनाओं में समाज की अभिव्यक्ति किस प्रकार हुई है? प्रत्येक रचनाकार की अपनी एक खास दृष्टि होती है। उसका चिंतन, मनन करने का अपना नजरिया होता है। इसलिए एक ही समय में रचना करते समय दो अलग-अलग लेखकों की

रचनाओं में समाज की अभिव्यक्ति एक जैसी नहीं होती क्योंकि वह भिन्न-भिन्न विषयों पर लेखनी चलाते हैं। एक रचनाकार किसी क्षेत्र विशेष का छोटा-सा टुकड़ा उठाकर साहित्य रचता है तो दूसरा रचनाकार किसी अन्य अंचल विशेष को आधार बनाकर अपने समय के व्यापक सच को सामने लाता है। 'गोदान' में समाज को खोजने का अर्थ है कि उस समय किस प्रकार औपनिवेशिक दासता में भारत का सामाजिक परिवेश टूट रहा था? जमींदार और साहूकारों के बीच शोषण की भट्टी में किस प्रकार आम-आदमी पिस रहा था? होरी जैसा मेहनतकश किसान और मजदूर हाड़तोड़ मेहनत के बावजूद भी दो जून की रोटी के लिए भटक रहा था? इस सब का कारण उस समय की औपनिवेशिक और सामाजिक व्यवस्था थी। इसी प्रकार 'मैला आँचल' में सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं के माध्यम से समाज को खोज सकते हैं। 'गोदान' में झुनियाँ की जो स्थिति है, उसी तरह 'मैला आँचल' में लक्ष्मी दासिन की है, एक ब्राह्मण की वासना की शिकार है तो दूसरी मठ के मठाधीश की। इन दोनों ही उपन्यासों में हम स्त्री के शोषण के समाजशास्त्र को समझ सकते हैं। धर्म की आड़ में किस प्रकार स्त्री का शोषण होता है, मठों के मठाधीशों पर प्रश्न खड़ा होता है।

उन्नीसवीं सदी के अंतिम चरण में साहित्य के लिए यह कहा जाने लगा कि 'साहित्य समाज का दर्पण है' यानी समाज में जो घट रहा है वही साहित्य में प्रकट होता है। द्विवेदी युग में यह दर्शनवादी दृष्टिकोण खूब प्रचलित हुआ जिसकी बाद में आलोचना भी हुई। जाहिर है कि रचना में समाज सीधे तौर पर नहीं आता। उसमें लेखक की अनुभूति, कल्पना, आशा-आकांक्षा आदि का समावेश होता है। इसलिए एक ही खास समय में रचना करने वाले साहित्यकारों में समाज का अलग-अलग रूप उभरता है क्योंकि प्रत्येक लेखक किसी न किसी विचारधारा से प्रभावित होकर रचना करता है। कुछ आलोचकों का यहाँ तक मानना है कि समाज रचना कि अंतर्वस्तु में ही नहीं बल्कि रचना के हर स्तर अर्थात् अंतर्वस्तु, संरचना, शिल्प और भाषा में भी समाज की अभिव्यक्ति होती है।

दरअसल साहित्य में समाज को खोजने का एक नजरिया हमारे पास है वह है आदिम समाज जिसमें मानव

*लेखक भारतीय भाषा केंद्र जेएनयू में शोधार्थी हैं।

शिकार करता था, प्राचीन समाज जिसमें कृषि करता था, मध्यकालीन सामंती समाज, आधुनिक पूंजीवादी समाज। इस प्रकार यह ऐतिहासिक तौर पर समाज को समझने का एक विभाजन है। गौरतलब है कि साहित्य में समाज की जो उपस्थिति है उसमें परम्परागत (ग्रामीण) समाज, स्त्री, दलित तथा आदिवासी समाज और तीसरा शहरी समाज जिसमें हम कॉल सेंटर में काम करने वाले आधुनिक मजदूरों को भी समाहित कर सकते हैं। इस प्रकार ग्रामीण से लेकर शहरी समाज की पूरी प्रक्रिया को हम साहित्य में बदलते देख सकते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि साहित्य में हम समाज की धड़कन को सुन सकते हैं और किसी कालखंड में समय और समाज के बदलते स्वरूप को उस समय के साहित्य से परख सकते हैं।

साहित्य के समाजशास्त्र में सामाजिक संस्थाओं/संगठनों के माध्यम से समाज का अध्ययन किया जाता है। गोदान में गोबर शहर में जाकर मजदूरों के साथ मिलकर मिल एवं कारखानों में हड़ताल करता है, मजदूरों के संगठन का सदस्य बनता है, लाल रंग की चादर साथ रखता है। शहर में जाकर गोबर में परिस्थितियों को समझने व सामना करने की चेतना का विकास होता है। इस तरह साहित्य में समाज की पड़ताल का यही अर्थ है कि उस समय का समाज कैसा था, सामाजिक परिस्थितियाँ किस प्रकार साहित्य में प्रतिबिम्बित हो रहीं थीं। व्यक्ति जीवनयापन किस प्रकार कर रहा था यह सब हमें साहित्य की सामाजिक हलचलों से ही पता चलता है।

अगर स्वराज्य अंग्रेज़ी बोलने वाले भारतीयों का और उन्हीं के लिए होने वाला हो तो निःसन्देह अंग्रेज़ी ही राष्ट्रभाषा होगी, लेकिन अगर स्वराज्य करोड़ों भूखों मरने वालों का, करोड़ों निरक्षरों का, निरक्षर बहनों का और दलितों और अंग्रेज़ों का हो और इन सबके लिए हो तो हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।

—महात्मा गाँधी

। ॐN॑r %Hkkrh; । ॐN॑fr dh vkrEk o fo'o dh । kjxfHkr Hkkrkk

नीरज कुमार श्रीवास्तव एवं बलवन्तसिंह*



हाल ही में भारत सरकार ने संस्कृत को बढ़ावा देने के लिए विद्यालयों में संस्कृत सप्ताह मनाने का निर्देश दिया है। स्कूलों में संस्कृत श्लोक, अन्ताक्षरी, लघु भाष्यम और आदिशंकराचार्य, मुद्राराक्षस जैसी संस्कृत की लघु फिल्में दिखाना, ये सब दिशा निर्देश केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा विद्यालयों को भेजे गये शासनादेश में निहित है। हाल ही में यह संस्कृत सप्ताह 7 से 13 अगस्त के बीच मनाया गया। तकनीकी छात्रों को सुझाव दिया जा रहा है कि वे अपनी तकनीक से जुड़ी जानकारी का उपयोग कर संस्कृत में कंप्यूटर ऐप्स व गेम्स भी बनाएं। इन सभी प्रयासों से हमारे नव युवाओं को हमारी संस्कृति व हमारी प्राचीन भाषा के बारे में प्रयोगात्मक तौर पर सरलतम जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

हजारों सालों तक जनमानस से लेकर साहित्य की भाषा रही संस्कृत भाषा वर्तमान परिस्थितियों व सरकारी उपेक्षा के कारण करीब-करीब विलुप्त होने की कगार पर है। इसका एक कारण इसे देवत्व का मुकुट पहना कर पूजाघर में स्थापित किया जाना भी है। भाषा को न तो अपने शब्दों की निगरानी एक चौकीदार की तरह करना भाषा है और न ही किसी कॉपीराइट में विश्वास रखती है ये तो समाज और जनमानस में बसती है।

वैदिक संस्कृत बिना किसी अवरोध के एक अवरल प्रवाह से बहती हुई अपने भारतीय समाज के हजारों वर्षों के क्रियाकलापों को परिभाषित करती रही है और आज भी परिभाषित करने की क्षमता रखती है। यह प्रवाह देशकाल व परिस्थितियों की सीमाओं से भी आगे जाने को तत्पर है। और यह जिस जगह से भी गुजरी है, उस स्थान का नामकरण भी उसी तरह से करती आयी है। संस्कृत संसार की प्राचीनतम भाषाओं में से एक है। जब यह दजला और फरात की भूमि से गुजरी तो उस स्थान का नामकरण भगवान प्रदत्त कह डाला, संस्कृत का भग शब्द फारसी ग्रन्थ अवेस्ता में वग हो गया और दत्त हो गया दाद और कालांतर में बगदाद बन गया। इसी प्रकार संस्कृत का अश्वक प्राकृत में आवगन में बदलकर फारसी में अफगान हो गया और साथ में स्थान का प्रत्यय स्तान में बदलकर नवीन शब्द अफगानिस्तान के रूप में प्रचलन में आया जो भारत का पड़ोसी देश है। अफगानिस्तान का शाब्दिक अर्थ है निपुण घुड़सवारों की निवास स्थली।

*लेखक-द्वय जीवन विज्ञान संस्थान में कार्यरत हैं।

स्थान ही नहीं संस्कृत किसी भी पूजाघर में जाने से भी नहीं कतराती क्योंकि इसके अनुसार ईश्वर का एक नाम 'अक्षर' भी है जिसका अर्थ है जिसका क्षरण न हो सके।

इस्लाम की पूजा पद्धति का नाम कुरान में सलात है, लेकिन आमजन इसे नमाज के नाम से जानते हैं, नमाज शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के धातु नमस् से हुई है जिसका प्रथम उपयोग दिया है ऋग्वेद में हुआ है, जिसका अर्थ है आदर व भक्ति में झुक जाना। गीता के ग्यारहवें अध्याय का श्लोक "नमो नमस्तेऽस्तु सहत्रकृत्वः पुनश्च नमो नमस्ते" यहाँ से नमस शब्द की यात्रा भारत से होती हुई ईरान पहुँची, जहाँ प्राचीन फारसी अवेस्ता उसे नमाज़ पुकारने लगे और अंततः यह तुर्की, अजरबैजान, तुर्कमेनिस्तान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, उज्बेकिस्तान, तजाकिस्तान, भारत, बांग्लादेश वर्मा इण्डोनेशिया ओर मलेशिया में लोकप्रिय हुई। संस्कृत केवल पश्चिम की तरफ ही प्रवाहित नहीं हुई, बल्कि यह पूर्व में अपनी धारा का प्रवाह बनाते हुए चीनी भाषा को 'मौन' शब्द देकर उनके हृदय को 'छू' गयी। (चीनी भाषा में ध्यानमग्न शांति को मौन और स्पर्श को छू कहकर बोला जाता है।)

संस्कृत ने कभी अपना विस्तार श्रीलंका और कम्बोडिया तक भी किया था, कम्बोडिया में अब भी संस्कृत मंदिरों, स्मारकों और शिलालेखों पर शोभित है।

भारत में संस्कृत के विद्वान जनों ने इस भाषा को आमजन तक पहुँचाने के लिए सूत्र वाक्य – "संस्कृतः अति सरला नहि कठिना" दिया है। पूर्व व पश्चिम के कई देशों में संस्कृत के प्रति रुचि पैदा हुई है, और विदेशी लोग भी संस्कृत सीखने भारत आ रहे हैं।

संस्कृत के वैज्ञानिक पहलू का मुरीद अमेरिका का नासा संस्थान भी हुआ है, नाशा के वैज्ञानिक रिक्स ब्रिग्स ने 1985 में भारत से संस्कृत के लगभग 1000 प्रकाण्ड विद्वानों को नासा में शोध कार्य के लिए आमंत्रित किया था, ताकि संस्कृत को कम्प्यूटर की भाषा के रूप में प्रयोग किया जा सके, इसका कारण यह है कि संस्कृत में कई ऐसी विशेषताएँ हैं, जो इसे कम्प्यूटर की भाषा बनाने में अन्य भाषाओं के इतर शिखर पर खड़ी करती है, जो निम्नवत है –

1. संस्कृत एक ऐसी प्राकृतिक भाषा है, जिसमें सूत्र के

रूप में कंप्यूटर के माध्यम से कोई भी सन्देश कम से कम शब्दों में भेजा जा सकता है।

2. संस्कृत का व्याकरण मर्फोलोजी एवं सिंटेक्स दोनों ही आधारों से अल्गोरिदमिक है। पाणिनि की अष्टाध्याई, जो कि संस्कृत के व्याकरण का अतुलनीय ग्रन्थ है, उसमें वर्णित सूत्रों को बहुत ही आसानी से कंप्यूटर की भाषा में परिवर्तित किया जा सकता है।
3. यह बहुत ही सुसंगठित व क्रमबद्ध भाषा है, जिसके द्वारा बहुआयामी शब्दों को ब्युत्पन्न कर उनका सरलता पूर्वक प्रयोग किया जा सकता है।
4. यह भाषा किसी भी वाक्य में शब्दों की स्थिति से स्वतंत्र होती है, अर्थात् वाक्य का आशय शब्दों की

स्थिति के परिवर्तित होने पर भी नहीं बदलता है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि संस्कृत पढ़ने से गणित व विज्ञान शिक्षण आसान हो जाता है। इसके पढ़ने से मन में एकाग्रता आती है और वर्णमाला के उच्चारण मात्र से ही गले का स्वर स्पष्ट हो जाता है। कल्पनाशक्ति के साथ-साथ स्मरण शक्ति में भी वृद्धि होती है।

भारत के पास संस्कृत के रूप में ज्ञान का एक बहुत बड़ा खजाना है, इसे हमें संरक्षित करना होगा क्योंकि यह भारतीय संस्कृति की आत्मा और विश्व की अमूल्य धरोहर है। यह अपने प्रवाह से विश्व की एक सारगर्भित भाषा बनने का अधिकार रखती है और सही अर्थों में यह एक दिन विश्व की सभी भाषाओं में शीर्ष मुकुट बनकर सुशोभित होगी।

मुझे खेद तो यह है कि प्रान्तों की मातृभाषा हिंदी है वहां भी उस भाषा की उन्नति करने का उत्साह दिखाई नहीं देता है। मेरा नम्र लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हिंदी भाषा को राष्ट्रीय और अपनी-अपनी भाषाओं को उनके योग्य स्थान नहीं देते तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं।

—महात्मा गाँधी

हिन्दी की होड़ किसी प्रांतीय भाषा से नहीं, केवल अंग्रेज़ी के साथ है।

—डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

vul g>k ç'u \

ओम प्रकाश सैन*



मैं एक धार्मिक व्यक्ति हूँ, परंतु धार्मिक होने का अर्थ मैं आज तक नहीं समझ पाया। कोई कहता है पूजापाठ, नमाज, प्रार्थना, अरदास करने वाला व्यक्ति धार्मिक होता है। कोई कहता है मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, चर्च आदि धार्मिक स्थलों पर जाने वाला व्यक्ति धार्मिक होता है। कोई कहता है कि भूखे रहकर ईश्वर को याद करने वाला व्यक्ति धार्मिक होता है। कोई कहता है तीर्थस्थलों पर जाने से ही व्यक्ति धार्मिक कहलाता है। कोई कहता है धर्मगुरुओं के प्रवचन सुनने वाला व्यक्ति धार्मिक होता है। कहीं मैंने पढ़ा था धर्म का अर्थ होता है 'धारण करने योग्य आचरण' अर्थात् सही और गलत की पहचान जिसे हो वह धार्मिक होता है। हर धर्म में धार्मिक होने के कुछ नियम-कायदे हैं।

एक प्रसिद्ध कहानी है कि किसी गाँव में चार अंधे रहते थे। एक बार उनके गाँव में एक हाथी आया। उससे पहले उन्होंने कभी हाथी जैसे किसी जानवर के बारे में नहीं सुना था इसलिए उन्हें उत्सुकता हुई कि हाथी कैसा होता है। चूंकि वे देख नहीं सकते थे इसलिए उन्होंने हाथी को स्पर्श करके महसूस करने की कोशिश की कि वास्तविकता में हाथी कैसा होता है। नेत्रहीन होने के कारण वे उस विशालकाय जानवर के स्वरूप को पूर्ण रूप से ग्रहण नहीं कर सके बस एक-एक अंग के साथ ही चिपके रहे। बाद में एक साथ एकत्र हुए और अपने अनुभवों की चर्चा करने लगे। एक ने कहा, "मुझे पहली बार पता चला कि हाथी एक बड़े खंभे की तरह होता है" क्योंकि उसने हाथी का केवल पैर छूकर देखा था। दूसरा बोला, "अरे तुम गलत कह रहे हो हाथी तो एक बड़े ढोल की तरह होता है" क्योंकि उसको तो हाथी के पेट का ही ज्ञान था। तीसरा कहने लगा, 'अरे तुम कहाँ सो रहे थे हाथी तो एक बड़े सूप की तरह होता है' क्योंकि उन महाशय ने हाथी के कान को ही छुआ था। चौथा कहने लगा, 'अरे तुम सब अंधे हो हाथी तो एक लचकदार झाड़ू की तरह होता है' क्योंकि वे जनाब तो हाथी की पूँछ पकड़कर ही लटकते हुए थे। इसी प्रकार धर्म भी एक ऐसे ही हाथी की तरह है जिसको जितना समझ आया उसे ही वे धर्म मानकर चलते हैं। बाकी सबकी बातें उन्हें गलत लगती है। मैं भी शायद उन्हीं अंधों में से एक हूँ क्योंकि मुझे भी आज तक धर्म और धार्मिक होने का अर्थ ही समझ में नहीं आया।

वैसे ये सब विचार मुझे तब आए जब मैं एक दिन धार्मिक होने के एक नियम के अनुसार मंदिर गया। वैसे मैं मंदिर अक्सर जाता रहता हूँ परंतु उस दिन एक अजीब सी घटना घटी जिसने मेरे मन में अनेक सवाल खड़े कर दिए। मैंने मंदिर में देखा कि एक भली सी दिखने वाली एक 45-50 के बीच की आयु की एक औरत भी पूजा कर रही थी। वह पूजा में कुछ ज्यादा ही लीन लग रही थी। बार-बार मूर्तियों को छू-छूकर प्रणाम कर रही थी, बार-बार सिर झुकाकर भक्ति कर रही थी। मंदिर में बहुत सी मूर्तियाँ थी, हर मूर्ति के सामने जाकर वह बहुत ही भक्ति-भाव से पूजा कर रही थी। अचानक मेरा ध्यान गया तो मैं चौंक गया कि वह मूर्ति के पास रखे चढ़ावे के पैसों को उठा-उठाकर अपने कपड़े से बने झोले में रख रही है। सबसे ज्यादा हैरानी मुझे तब हुई जब उसने एक मूर्ति के पास रखे लड्डू गोपाल के एक छोटे से पालने को धीरे से अपने झोले में रख लिया। मैं लगातार उसकी इन हरकतों को बड़े गौर से देख रहा था और सोच रहा था कि अब मुझे क्या करना चाहिए। ये सब देखते-देखते लगभग 10 मिनट हो गए थे। मेरे दिमाग में उन कुछ मिनटों में अनेक विचार आए।

सबसे पहले तो मैंने सोचा कि पुजारी को उस औरत की हरकत के बारे में बताऊँ परंतु मुझे अचानक उसी मंदिर की एक घटना याद आ गई। एक नशेड़ी व्यक्ति इसी तरह मंदिर से पैसे उठा रहा था और किसी ने उसे देख लिया तो तथाकथित धर्म के रक्षकों ने धर्म की रक्षा करने के लिए उस व्यक्ति को मंदिर प्रांगण में मार-मारकर लहलुहान कर दिया। वहाँ मौजूद तथाकथित भक्तों ने भी धर्म की रक्षा में अपनी भागीदारी निभाते हुए अपने हाथ साफ कर लिए। धर्म के रक्षकों का वह विचित्र रूप देखकर मैंने समझा की एक गलत कार्य को रोकने के लिए दूसरे गलत कार्य का कारण क्यूँ बनूँ। यह सोचकर मैंने विचार टाल दिया।

एलएलबी का छात्र होने के नाते मेरे मन में विचार आया कि मैं अपनी आँखों से अपराध होते नहीं देख सकता। लेकिन फिर सोचा कि क्या भारतीय दंड संहिता के प्रावधानों के अनुसार यह अपराध है भी या नहीं। मुझे धारा 378 का ध्यान आया जिसके अनुसार यदि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति के कब्जे में से, उस व्यक्ति की सम्मति के बिना, कोई जंगम

*लेखक जीवन विज्ञान संस्थान (एसएलएस) में वरिष्ठ सहायक हैं।

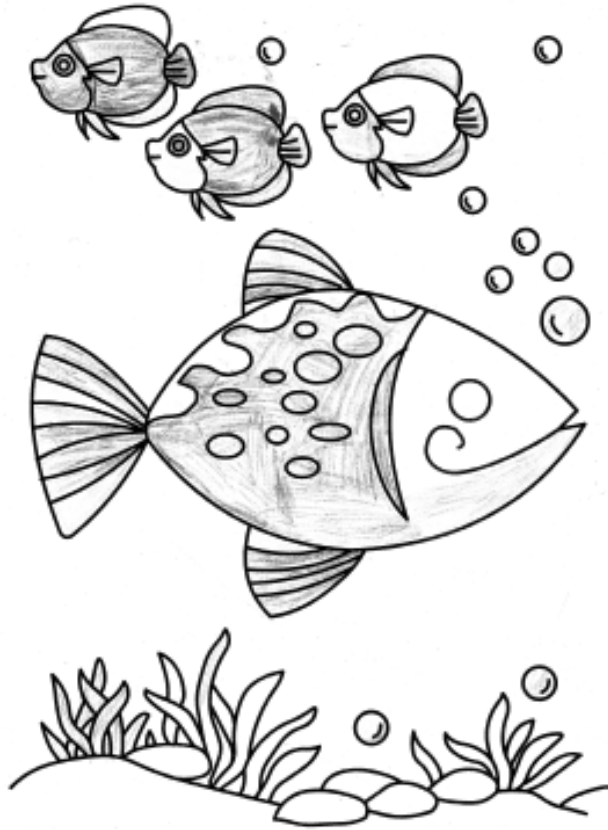
संपत्ति बेईमानी से ले लेने का आशय रखते हुए वह संपत्ति लेने के लिए हटाता है तो वह चोरी करता है, ऐसा कहा जाता है। परंतु इस मामले में न तो संपत्ति के मालिक का पता चल रहा था और न ही उस की सम्मति या असम्मति की बात ही समझ आ रही थी क्योंकि भक्तगण चढ़ावा भगवान को अर्पित करते हैं तो इस हिसाब से तो मालिक भगवान हुआ और भगवान की आँखों के सामने से ही उस संपत्ति को हटाया जा रहा था तो असम्मति का तो सवाल ही पैदा नहीं होता। परंतु चढ़ावे की संपत्ति तो पुजारी अपने घर ले जाता है। अब यह पता नहीं कि पुजारी भगवान से उस सामान को हटाने की सम्मति लेता है या नहीं?

फिर मैंने सोचा कि मुझे इस औरत को अकेले में समझाना चाहिए कि वह गलत कर रही है। ऐसे मंदिर से सामान उठाना ठीक नहीं होता। फिर दिमाग में विचार आया कि वह मुझसे उम्र में कहीं ज्यादा है और ऐसा कहना मुश्किल

है कि उसे यह पता न हो कि वह गलत कर रही है। फिर लगा कहीं अपने को फँसता देख वह मुझ पर ही कोई झूठा आरोप न लगा दे। मैंने तुरंत इस विचार से तौबा कर ली।

अंत में सोचा कि मुझे कुछ नहीं करना चाहिए और वही किया। ऐसा कहा जाता है कि यह संसार ईश्वर की मर्जी से चलता है हम सब उसके हाथ की कठपुतली हैं। वह जैसा चाहे हमसे वैसा करवाता है, हमारे हाथ में कुछ भी नहीं है। तो इस हिसाब से जो वह औरत कर रही थी वह भी ईश्वर की ही मर्जी थी और जो मैंने किया वह भी ईश्वर की ही मर्जी थी। इस हिसाब से अच्छा-बुरा कुछ भी नहीं है क्योंकि जब सब ईश्वर की मर्जी से होता है तो हम अच्छा या बुरा करने वाले कौन होते हैं? परंतु समझ में आज तक नहीं आया कि धर्म क्या है? कहीं वह औरत उस पैसे से अपने बच्चों का पेट भरकर अपने मातृधर्म का पालन ही तो नहीं कर रही थी?

नोट : ये मेरे निजी विचार और अनुभव हैं और मेरा उद्देश्य किसी की धार्मिक भावना को ठेस पहुँचाना नहीं है।



My Jambha Colouring - 1

15 ✓

I Qks dh ikp dfork, j

डॉ. रमण सिन्हा*

सेफो (615–550 ई.पू.) यूनान के लेसबोस द्वीप में जन्म। युवा स्त्रियों की प्रसिद्ध अकादमी की एक प्रतिबद्ध शिक्षिका एवं कवयित्री के रूप में विख्यात। प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो उन्हें 'दशम वाग्देवी' (टेंथ म्यूज़) कहकर पुकारते हैं। उनके नाम से 'सेफिक छंद' का होना उनकी लोकप्रियता बताता है।

dfork , d %

i Foh

इन्द्रधनुष—वर्णी मालाओं से
की गई है कढ़ाई
यह पृथ्वी।

dfork nks %

plnæk

रूपसी चन्द्रमा के चारों ओर नक्षत्र
छुपा लेते हैं अपनी चमक
जब पूर्णिमा में वह दमकती है
पृथ्वी पर
रजतमान।

dfork rhu %

plnæk vlg vlg ra

चन्द्रमा उपस्थित हुआ सम्पूर्णता में
वेदिका के चहुँ ओर जब ग्रहण किया
औरतों ने अपना आसन।

सेफो प्राचीन काल की रचनाकारों में विशिष्ट हैं और गीति कवयित्री के रूप में तो सम्भवतः महानतम। इनकी अधिकांश कविताएँ प्रेम के खट्टे मीठे अनुभव की अभिरचनाएँ हैं जो होमर की तरह महाकाव्यात्मक आख्यान रचने या ईश्वर को संबोधित करने की आकांक्षा से हित हैं — यह एक व्यक्ति का किसी दूसरे व्यक्ति से नितान्त आन्तरिक वार्तालाप को कविता के शिल्प में ढाल देना है। प्रकृति का अवबोध भी यहाँ नितान्त व्यक्तिगत है।

dfork pkj %

Øhr dh urfd; k

क्रीत* की युवतियों ने किया नृत्य
अति सुनम्य
एक सुसज्जित वेदिका के चारों ओर
हौले पाँव
कुचलते घास के कोमल फूल।

* यूनान का एक द्वीप

dfork ikp %

[kpk dh rjg

खुदा की तरह है मेरी निगाह में वह
जो बैठता है वहाँ जहाँ से निहार सके
आपकी निगाह, जो सुनता है आपके
करीब, सुनने वह नर्म आवाज, इसकी मिठास
प्यार की सरगोशियाँ और

हँसी, सब उसके लिए। लेकिन यह तोड़ डालता है
मेरे भाव; मेरे सीने के अन्तरतम में हिल गया है
पूरा का पूरा दिल। सिर्फ देख लेने दो मुझे कहाँ हो तुम,
मर जाती है आवाज, कुछ भी मैं कह नहीं पाती।

पर मेरे होंठ चुपियों से आहत हैं, मेरी
त्वचा के अन्तरतम में एक विरल—सी लपट
उमड़ पड़ती है, कुछ भी नहीं दिखता मेरी आँख
के सामने, मेरी श्रुतियाँ सुन्न हैं मेघ गर्जन से

और पसीना मुझे तर—ब—तर किये जा रहा है, बुखार
मेरे जिस्म को कँपा रहा है, बेरंग हो गई हूँ
महसूस करती हूँ कि मौत मेरे करीब आ गई है।

(रिचर्ड लातिमोर के अंग्रेजी अनुवाद पर आधारित)

*अनुवाद एवं प्रस्तुति : डॉ. रमण सिन्हा, भारतीय भाषा केन्द्र, जेएनयू



वुपkn %dN 'kksk dN foe'kZ

शिवम शर्मा*

अनुवाद प्रारंभ से ही समाज में किसी न किसी रूप में उपस्थित रहा है। आज अनुवाद एक नये अनुशासन के रूप में स्थापित हो चुका है और विभिन्न विश्वविद्यालयों में पठन-पाठन, शोध एवं विमर्श को प्राप्त कर रहा है। इस अनुशासन में शोध और विमर्शों को भी एक नई दिशा मिल रही है जिसके संदर्भ में कुछ तथ्यात्मक बिंदु निम्न हैं :

- प्रारंभ में अनुवाद को दोयम दर्जे का कार्य माना जाता था। परन्तु विश्व भर में फैले हाशिए के विमर्शों की सह पाकर अनुवाद भी अपने अस्तित्व को खड़ा करने में सफल हुआ है। और यह भी स्त्री, दलित आदिवासी, आदि विमर्शों से शक्ति लेकर खुद को मुख्य धारा में अर्थात् मूल लेखन के समकक्ष खड़ा हो गया है।
- प्रारंभ में अनुवाद करने या कराने के पीछे राजनीतिक, धार्मिक प्रेरणा अधिक होती थी, स्वैच्छिक कम। परन्तु वर्तमान में 'अनुवाद की राजनीति' ने अनुवाद करने या करवाने की प्रेरक शक्तियों पर अनुवाद-चिंतकों को सोचने पर मजबूर कर दिया है और भाषायी राजनीति का पूरा प्रभाव अनुवाद पर पड़ता है, और बहुसंस्कृतिकता को पोषण करने के लिए आने वाले धन-बल का भी अनुवाद ने खूब उपयोग किया है।
- प्रारंभ में माना जाता था कि अनुवाद को मूलनिष्ठ होना चाहिए पर अब विचारधारा बदल रही है। अनुवाद का भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। वह क्यों मूल जैसा दिखे ? अनुवाद को भी अपनी स्वतंत्र सत्ता चाहिए आदि-आदि। परिणामतः अनुवाद को ;ज्त्तंदेसंजपवदद्ध की सीमा में न बंध कर 'भाषान्तरण, भावान्तरण, रूपान्तरण, कायान्तरण आदि तमाम रूपों में खुद को परिलक्षित कराने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए।
- अनुवाद को क्या मूल पाठ जैसा पढ़ाया जा सकता है ? अगर नहीं तो क्यों ? यह मुद्दा भी अनुवाद चिंतकों के मध्य स्थान घेरे हुए है। अरस्तू, प्लेटो,

आर्कमिडिज के सिद्धांत आदि ऐसे विषय रहे हैं जिन्हें हम अधिकांश भारतीय अपनी भाषा में ही पढ़ते आये हैं। जो कि अनुवाद के द्वारा प्रच्छन्न रूप में संभव हुआ है। पर कभी अध्यापक या छात्र ने इस बिंदु पर ध्यान नहीं दिया, अगर ध्यान दिया तो कभी विमर्श के रूप में मुख्य धारा में चर्चा नहीं पा सका। पर वर्तमान में अनुवाद चिंतकों के लिए प्रासंगिक विमर्श बन चुका है।

- अनूदित, अस्मिता (Translating Identity) अनुवाद की राजनीति (Politics of Translation) बहुसंस्कृतिवाद और अनुवाद (Translation & multi-culturalism) अनूदित संस्कृति (Translating Culture) अनूदित जेंडर (Translating gender), अनुवाद और सत्ता विमर्श (Translation & power of Discourse) आदि विषय अनुवाद चिंतन एवं शोध के केंद्र में आकर खड़े हुए हैं।
- प्रारंभ से ही अनुवाद प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में खूब होता रहा है। परंपरा और विकास से जुड़े आलेख और व्याख्यान खूब पढ़ने, सुनने, गुनने को मिल सकते हैं परन्तु अनुवाद के इतिहास, परंपरा पर अलग-अलग भाषाओं में व्यवस्थित ढंग से लिखने की जरूरत है। और साथ ही अनूदित साहित्य की विधागत सूची भी तैयार करने की आवश्यकता है जिससे कि अनुवाद के स्वतंत्र विधागत अस्तित्व की जड़ें मजबूत हो सकें।
- अनुवाद दर्शन प्रारंभ से ही यह मानता रहा है कि सम्पूर्ण चराचर जगत किसी दृश्य-अदृश्य के विचारों का अनुवाद है। इस बिंदु पर भी अनुवाद को परख कर पक्ष या विपक्ष में दृष्टान्त सहित बड़े विमर्श की उम्मीद की जा रही है।
- अनुवाद के सबसे बड़ी संभावना युक्त क्षेत्र मशीनी अनुवाद शुरुआत के दिनों से ही आलोचना का विषय रहा है। परन्तु तमाम असंभावनाओं/आशंकाओं के होते हुए भी इसके पक्षधर अपनी उम्मीदों को संजोए हुए देश भर में अपने-अपने संस्थानों में दिन

*शिवम् शर्मा, हिंदी अनुवादक, हिंदी एकक, जेएनयू

रात शोध में संलग्न हैं। कृत्रिम बुद्धि के विकास से संभावना थोड़ी प्रबल हो रही है। मुद्दा शोध एवं विमर्श के केंद्र में है।

- जबसे अनुवाद विज्ञान/कला/अध्ययन ने स्वतंत्र अनुशासन के रूप में विश्व भर के तमाम विश्वविद्यालयों में अध्ययन, अध्यापन, शोध एवं विमर्श में जगह पायी है तब से इस अनुशासन की शब्दावली में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है वर्तमान में 'अनुवाद विज्ञान पारिभाषिक कोश' पर शोध एवं निर्माण की आवश्यकता है। यह मुद्दा भी शोधपरक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।
- अनुवाद को केंद्र में रखकर कई भाषाविज्ञानियों, अनुवादकों, समाजचिंतकों, जनप्रतिनिधियों/संस्कृति विदों ने कुछ वक्तव्यों, टिप्पणियों, आलेखों में अपने विचार व्यक्त किए हैं, इनका एक स्थान पर संग्रह (हालांकि साहित्य अकादमी ने इन परिजनों को साकार रूप देने का प्रयास किया है) होने से शोध एवं विमर्श को और बल मिल सकता है।
- अनुवाद और बहुसांस्कृतिकता :

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि अनुवाद को सांस्कृतिक सेतु की संज्ञा दी जाती है। सांस्कृतिक सेतु के अर्थ में अनुवाद दो संस्कृतियों के मध्य संप्रेषण का कार्य करता है। संस्कृति का निर्माता समाज है और अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा। तात्पर्य यह कि संस्कृति का सीधा संबंध समाज और उसकी भाषा से है। एक देश की भौगोलिक परिधि में विभिन्न संस्कृतियाँ विकसित एवं पल्लवित होती हैं। और लोकतंत्र में सभी संस्कृतियों को समान रूप से विकसित होने का अधिकार है। राष्ट्र राज्य की संकल्पना के पश्चात् एवं लोकतंत्र की स्थापना के साथ ही समाज को साम्प्रदायिकता से बचाने तथा उसके उच्च विकास हेतु बहु सांस्कृतिकता की अवधारणा विकसित की गई। और उसमें परस्पर संप्रेषण हेतु अनुवाद मुख्य आयाम बनकर उभरा।

हालांकि बहुसांस्कृतिकता की आड़ में कट्टरपंथियों एवं चरमपंथियों ने आतंकवाद को पोषण भी प्रदान किया और इसी कारण पिछले दशकों में यूरोप के सभी देशों में बहुसांस्कृतिकता की राजनीतिक परियोजना विफल हो चुकी। इस दौरान बहुसांस्कृतिकता को मेलिंग पॉट, सेलॉड बाउल, कसाटा आइस्क्रीम, इंडियन थाली आदि-आदि के रूपकों में व्याख्यायित करने का प्रयास भी विद्वानों ने किया। अंततः बहुसांस्कृतिकता के स्थान पर एकल संस्कृति की संकल्पना उभरी। परंतु गौर करें तो और समाजशास्त्री भीखू पारेख के शब्दों में कहें तो एकल संस्कृति का आधार भी कई संस्कृतियों का परस्पर सामंजस्य ही है। जिसका आधार अनुवाद है। आज जिसे हम भारतीय संस्कृति की संज्ञा देते हैं वह भी कई संस्कृतियों का सम्मिश्रण है।

भूमंडलीकरण की वजह से दुनियाँ एकरूपता की तरफ बढ़ रही है। यह एकरूपता भी बहुसांस्कृतिकता के इंद्रधनुष के लिए खतरा है। शोध एवं विमर्श की दृष्टि से यह विषय भी महत्वपूर्ण है इसके अतिरिक्त निम्न शीर्षक भी प्रासंगिक हैं।

- भाषा विज्ञान और अनुवाद अंतःसंबंध
- अनुवाद, भूमंडलीकरण और प्रवासी साहित्य
- अनुवाद : कुछ शोध कुछ विमर्श
- अनुवाद अध्ययन की शोध प्रविधि
- अनुवाद का स्वरूप और भारतीय संदर्भ
- साहित्य अकादमी की अनुवाद नीति
- विभिन्न साहित्यों (कहानी, उपन्यास, काव्य) में अनूदित स्त्री अस्मिता
- विभिन्न साहित्यों में अनूदित दलित अस्मिता
- अनुवाद और सत्ताविमर्श
- अनुवाद की पारिभाषिक शब्दावली और परिभाषा कोश
- हिंदी साहित्यकारों का अनुवादकीय प्रदेय
- हिंदी अनुवाद का इतिहास

भाषा कल्पवृक्ष है। उससे जो भी आस्थापूर्वक माँगा जाता है, भाषा वह देती है। उससे कुछ माँगा ही न जाए, क्योंकि वह पेड़ से लटका हुआ नहीं दीख रहा है, तो कल्पवृक्ष भी कुछ नहीं देता।

—सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'



dl; Wj vkj fgnh

सुमेर सिंह*

इक्कीसवीं सदी सूचना और प्रौद्योगिकी की सदी है। दिन प्रतिदिन नई-नई तकनीक जन्म ले रही हैं। यही नई तकनीक सूचना के सशक्त माध्यम हैं। प्रौद्योगिकी के इस युग में सूचना का संवाहक एवं सबसे सशक्त माध्यम कंप्यूटर हैं। भारत जैसे बहुभाषी देश में कंप्यूटर क्रांति के सूत्रपात के समय अन्य भाषाओं में कामकाज की विकराल समस्या रही है। परन्तु आधुनिक कंप्यूटर भाषाओं के लिए वरदान सिद्ध हो रहा है। आज विश्व की लगभग सभी भाषाओं ने कंप्यूटर को अपना अभिन्न अंग बना लिया है। यह सब यूनिकोड की देन है।

यूनिकोड विश्व की लगभग सभी भाषाओं के लिए हार की मध्यमणि बनकर उभरा है। इसकी सहायता से सभी भाषाओं में कंप्यूटर पर सरलता से कार्य किया जा सकता है। यूनिकोड के कारण राजभाषा हिंदी भी अब अंग्रेजी से कतरई पीछे नहीं है। इसने भाषा का कायापलट कर दिया है। इसने सूचना और प्रौद्योगिकी के युग में हिंदी को नए पंख प्रदान किए हैं। वर्ड-प्रोसेसिंग से लेकर ई-मेल, वेबसाइट निर्माण आदि कार्य सहजता से किए जा सकते हैं। यूनिकोड को विश्वभर में मान्यता मिल चुकी है।

, udkfMax i z kkyh % ; fudkM

यूनिकोड एक 16बिट की एनकोडिंग सिस्टम है अर्थात् इसमें प्रत्येक संकेत को स्टोर और एक्सप्रेस करने के लिए सोलह बाइनरी अंकों का प्रयोग होता है। इसमें 65536 अद्वितीय संयोजन संभव है। इस प्रकार यूनिकोड कंप्यूटर में इनपुट डाटा को फॉट की सीमाओं से बाहर निकाल देता है। इस एनकोडिंग में किसी भी अक्षर, अंक या संकेत को सोलह अंकों के अद्वितीय संयोजन के रूप में सहेज कर रखा जा सकता है। किसी एक भाषा में इतने सारे यूनिक अक्षर मौजूद न होने के कारण इस मानक (स्टैंडर्ड) में विश्व की लगभग सभी भाषाओं को शामिल कर लिया गया है। हर भाषा को इन 65536 संयोजकों में से उसकी वर्णमाला संबंधी आवश्यकताओं के अनुसार स्थान दिया गया है इस प्रणाली में सभी भाषाएं समान दर्जा रखती हैं और सहजीवी हैं। इसका मतलब यह हुआ कि यूनिकोड आधारित कंप्यूटर पहले से ही विश्व की हर भाषा से परिचित है बशर्ते कि

*लेखक जेएनयू में हिंदी अधिकारी हैं।

ऑपरेटिंग सिस्टम में इसकी क्षमता हो। यूनिकोड न केवल हिंदी, पंजाबी, तमिल अपितु चलन में न रही भाषाओं यथा पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से भी परिचित है। इसे व्यापक रूप से विश्वव्यापी सूचना के आदान-प्रदान में मानक के रूप में स्वीकार कर लिया गया है।

; fudkM I fØ; djus dh fof/k %

विंडोज एक्सपी में – Start > control panel > Date, Time Language & Regional Option > Languages Tab पर जाएं और अब Install piles for Cpmplex Scripts पर क्लिक कर apply दबाएं। 2. अब खुलने वाले डायलॉग बॉक्स में दिखाया जाएगा कि आप अपने कंप्यूटर में इंडिक और कुछ दूसरी भाषाओं की फाइलें कॉपी करने जा रहे हैं। इसके बाद OK पर क्लिक करें। 3. इस पर आगे इंस्टॉलेशन सीडी मांगी जाएगी। इसके बाद कंप्यूटर सीडी से कुछ फाइलों को कॉपी करेगा। 4. यह प्रक्रिया पूरी होने के बाद ऊपर दिए गए Details को दबाकर Add बटन पर क्लिक करें। अब खुलने वाले छोटे डायलॉग बॉक्स में अलग-अलग लिपियों (स्क्रिप्ट्स) की सूची होगी, इसमें हिंदी को चुनें। अब OK बटन दबाकर Regional and Language options वाला डायलॉग बॉक्स बंद कर दें। टास्क बार पर EN और HI वाला ऑप्शन दिखाई देने लगेगा अर्थात् अब हिंदी यूनिकोड सक्रिय हो चुका है। यदि लैंग्वेज बार दिखाई न दे तो Start > Control panel > Date, Time, Language and >Regional > options Language Tab > Details पर जाएं और Language Bar बटन पर क्लिक करें। यहां दिखने वाले ऑप्शन के सामने बॉक्स पर टिक कर करें और फिर से दबाकर डायलॉग बॉक्स बंद करें। लैंग्वेज बार दिखने लगेगा। विंडोज सर्वर 2003 में विंडोज एक्सपी की तर्ज पर यूनिकोड सक्रिय होता है।

विंडोज विस्टा और विंडोज 7 में ऑपरेटिंग सिस्टम्स में उक्त फाइलें पहले से ही मौजूद हैं। अतः हिंदी को सक्रिय करते समय सीडी की आवश्यकता नहीं है। इसके लिए start > Control Panel > Language and Region > Region and Language पर क्लिक करें। Region and Language डायलॉग बॉक्स खोलें। अब Keyboards and Languages

टैब पर क्लिक करें तथा फिर change Keyboard दबाएं। अब दिखने वाले डॉयलॉग बॉक्स में Add बटन दबाएं जिससे भाषाओं की लिस्ट दिखाई देने लगेगी। यहां HINDI (INDIA) का चयन कर फिर वही दिए + के निशान पर क्लिक कर Devnagri + Inscript की-बोर्ड को चुनें। भारत का मानक की-बोर्ड Inscript है। बस OK बटन दबाएं और लैंग्वेज बार में हिंदी हाजिर है। यूनिकोड एक्टिवेट करने की प्रक्रिया राजभाषा विभाग की वेबसाइट पर <http://rajbhasha.nic.in> ई-उपकरण के अंतर्गत दी गई है।

!fudkM dsytkk

1. अक्षरों की बनावट में एकरूपता।
2. वर्ड प्रोसेसिंग, डाटा प्रोसेसिंग (एक्सेल, स्प्रेड शीट), पावर प्वाइंट, ई-मेल, वेबसाइट, ई-ऑफिस आदि में हिंदी में सहज कार्य।
3. हिंदी में बनी फाइलों का आसानी से आदान-प्रदान।
4. गूगल या अन्य किसी सर्च इंजन में आसानी से सर्च कार्य।
5. विराम चिह्नों, विशेष अक्षरों यथा ट्र, प्त, क्र, कृ आदि की वैज्ञानिक बनावट।

6. हिंदी टंकण जानने व न जानने वाले व्यक्तियों के लिए इंस्क्रिप्ट, रेमिंगटन व फोनेटिक की-बोर्ड ले-आउट।
7. हिंदी व अंग्रेजी कार्य साथ-साथ करने की सुविधा।
8. बार-बार फांट बदलने व फांट साइज के झंझट से मुक्ति।
9. किसी कंप्यूटर में यूनिकोर्ड में टंकित टेक्स्ट (पाठ) को दूसरे सिस्टम पर आसानी से पढ़ा जाना; जंक लैंग्वेज से मुक्ति।
10. हिंदी के अन्य फांट से अधिक तेज गति से टंकण संभव।

fu"d"K %

यूनिकोड की सहायता से न केवल हिंदी, अपितु अन्य भारतीय भाषाओं में भी आसानी से कार्य किया जा सकता है। आजकल सभी कंप्यूटरों में यूनिकोड इनबिल्ट होता है। इन कंप्यूटरों में मोबाइल की तरह किसी भाषा में सहजता से कार्य किया जा सकता है। यूनिकोड सूचना क्रांति में भारतीय भाषाओं के लिए वरदान सिद्ध हो गया है।

हिन्दचीन में मुझे अपनी बहुत दिनों की भूली हुई फ्रेंच का जंग छुड़ाना पड़ा, क्योंकि कुछ आदमियों से बातचीत करने का कोई दूसरा जरिया ही नहीं था। हिन्दुस्तानियों से फ्रेंच में बात करना मुझे अजीब मालूम होता है। फिर भी वह उतना अजीब नहीं है जितना हिन्दुस्तानियों का आपस में अंग्रेजी में बातचीत करना।

—जवाहरलाल नेहरु



I okfuofUk

मैं निवृत्त हूँ नौकरी से
पर कर्म से नहीं।
मैं निवृत्त हूँ सेवा से
पर कर्तव्य से नहीं।।

आएगी जब सुबह कल
तो उठना होगा समय से।
काम तो अब भी बहुत पड़े हैं
हो सके तो सामना हो आलस्य से।।

भविष्य अब संवर गया
जीवन अब संवारना है।
बदले पुराने सोच छोड़
मनुष्य अब बनना है
दे सकूँ अपने साँझ को
एक नए उद्दीपन का रूप।।

सृजन के लम्बे समय को
मुड़कर देखता हूँ आज
कई कर्तव्यों से या फिर
बंधनों से मुक्त हूँ आज।
पर इच्छा है, फिर भी
काम आ सकूँ सबके
दे सकूँ सभी को
सुकून, स्नेह और सेवा का दान।।

*कुलसचिव, जेएनयू

ifjokn] ij d vkj [kq kh

मुझे शिकायत है कि –
गुलाब संग, काँटे भी हैं।
परन्तु खुशी भी कि –
काँटों के पथ गुजर, गुलाब खिलता है।।

मुझे शिकायत है कि –
कमल खिलते हैं, कीचड़ में।
परन्तु खुशी भी कि –
कीचड़ में भी गुंजन करते हैं कमल।।

मुझे शिकायत है कि –
दिया संग अंधेरा, तल पर है।
परन्तु खुशी भी कि –
अंधेरे के ऊपर ज्योति विराजमान है।।

मुझे शिकायत है कि –
भूख और खाने में, मची है होड़।
परन्तु खुशी भी कि –
खाने में बसी है सुधा तृप्ति की डोर।।

मुझे शिकायत है कि –
जुदाई में पिरोया हुआ है, मिलन का दर्द।
परन्तु खुशी भी कि –
मिलन के सपने, अब देते हैं जुदाई को चुनौती।।

मुझे शिकायत है कि –
पानी नहीं तो, प्यासा ही है जीवन।
परन्तु खुशी भी कि –
प्यास को हर, सिर्फ पानी ही है जीवन।।

मुझे शिकायत है कि –
बादल गरजने से होती है चकाचौंध।
परन्तु खुशी भी कि –
रिमझिम बारिश, तो बादल ही लाते हैं।।

मुझे शिकायत है कि –
समय की सूई को नहीं रोक पाया।
परन्तु खुशी भी कि –
लगभग सभी कार्य, घड़ी से ही कर पाया।।



ॐ; ka | kpy \

मैं क्यों सोचूँ कि सारा जग,
मुझसे ही अनुपम प्यार करे।
बात मेरी सिर धारण कर,
सदा शिष्ट व्यवहार करे।
मैं क्यों सोचूँ कि लोग मेरी,
बातों को ही स्वीकार करें।
मानें मुझको उत्तम केवल,
न और किसी की चाह करें।
मुझको राहों में फूल मिलें,
काँटों को न पहचानूँ मैं।
खुशियों का समूँ चहुँ ओर रहे,
गम होता है क्या न जानूँ मैं।
मैं क्यों सोचूँ कि बिना लड़े ही,
विजय युद्ध में प्राप्त करूँ।
अपनी ही जय—जयकार रहे,
बस अपना ही यश व्याप्त करूँ।
मैं क्यों सोचूँ हर सुख मेरा,
हर वैभव पर अधिकार रहे।
हर सपना हो साकार मेरा,
हरदम मेरी सरकार रहे।
बस नाम विश्व में हो मेरा,
दुनिया मुझ पर अभिमान करे।
सबसे उत्तम हो चरित्र मेरा,
बस मेरा ही सम्मान करे।
केवल मैं रहूँ 'नवीन' सदा,
मैं कभी भी न प्राचीन बनूँ।
मैं क्यों सोचूँ बस अपना हित,
निज स्वार्थयुक्त, अति—दीन बनूँ।

uohu fl g*

* कवि जेएनयू के छात्र हैं।

fVefVekgV & , d ptku

एक भीगी रात में, सर्द हवाओं के साथ में
एक पतंगा उड़ निकला, रोशनी की तलाश में
अंजान बना, मँडराता रहा इर्दगिर्द
गर्मी की चादर लपेटे लौ की टिमटिमाहट में
कब मिटा देगी मदमस्त पतंगे की हसरत को
नहीं जानता, कब गर्म हवा निगल लेगी जिस्म की गर्मी को
और रह जाएगा एक निर्जीव जीव रूपी ढांचा
फिर आयेगा एक और पतंगा दोहराने को अपनी गाथा
फिर मिट जायगा और पूर्ण कर जाएगा कालचक्र की व्यथा

टिमटिम टिमटिम तारे करते बालकों को प्यारे लगते
गोल गोल से चन्दामामा बोलबोल कर हाथ फैलाते
माँ के अंचल मे छुप छुप कर तोतले तोतले बोल बताते
पिता की अँगुली पकड़ अपनी पहचान बनाते
नहीं जानते धूमिल हो जायेंगे ये जीवन के पथ पर सारे
भूल कर सारे वादे, यश, अपयश, अपने, प्यारे
सिमट कर रह जाएंगे अपने ही कवच में
फटी आँखें और बुदबुदाते होंठ आतुर हो जायेंगे
आकाश को अपनी बाँहों में भरने को
बुजुर्गी की हद पार कर पञ्च तत्त्व मे मिलने को
खो देंगे अपना अस्तित्व टूटे हुए तारे की तरह

प्रोफेसर दीपक शर्मा*

*प्रो० दीपक शर्मा, जीवन विज्ञान संस्थान, जेएनयू में कार्यरत हैं।



fi z

प्रिय !
तुमसे
मेरा अगाध प्रेम
वर्णित नहीं कर सकता
शब्दों में
तुम
सिर्फ और सिर्फ
मुझे ही देखो
बल्कि
सोचो भी
मेरे ही बारे में
किसी और को नहीं
किन्तु मेरी
कोई गारन्टी नहीं
हाँ,
इतना अवश्य
मैं तुम्हें भी देखूँ
और
औरों को भी
देखता हूँ
देखे बिना
रह नहीं सकता
मैं तो भावुक हूँ
भावनाओं की लहरों में
बह ही जाता हूँ
बस ।

vkf[kj dc rd

कब आयेगी सद्बुद्धि
इतिहास को देख
कुछ सीख
वर्तमान को संवार
भविष्य को बचा
इस चराचर जगत के
श्रेष्ठ जीव
मानव
अब भी समय है
संभल
वरना
इस वर्चस्व के झूठे
महाकुम्भ में
पता नहीं
कहाँ खो जाएगा
रह जाएँगी
बस
धुंधली यादें
बनकर इतिहास
लाशों के ढेर पर
सत्ता
सदियों से अब तक
ढोता रहेगा
आखिर कब तक
कब तक

गंगा सिंह शेखावत*

*लेखक जेएनयू की हिंदी एकक में सहायक है।



tʃ u; wi f j l j

जेएनयू विद्यार्थियों की वीरान दुनिया के रहनुमा हो तुम
अज्ञान की अंधेरी नगरी के आफताब हो तुम
तुम्हारे बुद्धिजीवियों के श्रम की शबनम ने
विद्यार्थियों की मायूसियों व अज्ञानता की
गर्द को धो डाला
अपने पुस्तकालय के सागर में
छिपे ज्ञान के रत्नों को
युवा विद्यार्थियों में बांट डाला
जेएनयू के परिसर से
समेट कर ज्ञान के भण्डार को
कितने ही विद्यार्थियों ने विदेशों में व भारत में
जेएनयू के नाम का परिचय लहराया
कोई बना प्रोफेसर-साइंटिस्ट,
कोई कंप्यूटर इंजीनियर
कोई बना डॉक्टर और
कोई आईपीएस, आईएएस ऑफिसर
विदेशियों की खुल गयी मुंदा आंखें
आवाक रह गयी दुनिया
जेएनयू यह तेरे कर्मठ कुलपति, कुलसचिव
प्रोफेसर एवं सहकर्मियों की निष्ठा का है प्रताप
जेएनयू का माहौल सजग व प्रगतिशील है
यहां की मिसाल खुद ही बेमिसाल है।
अंधेरी डगर को ज्ञान के प्रकाश
से आलौकित करता यह प्यारा
जेएनयू परिसर हमारा।

कुसुम लता शर्मा (तमन्ना)

*पूर्व वरिष्ठ सहायक, जेएनयू

y k g s d s o { k g j s g k a r k s -

लोहे के वृक्ष हरे हों तो...
विफलताओं की बंजर भूमि पे भी
सफलताओं के नव बीज लगेंगे।।
कांसे की मृगतृष्णा से
उपरति के नव औजार बनेंगे।।
आकांक्षाओं की प्रसुप्त बीजों से,
निराशाओं के कोपल फूटेंगे।।
जो लोहे के वृक्ष हरे हों तो...
जड़-मूढ़ विक्षिप्त प्राणी के मुख से भी
काव्य लहरियों के नव बोल फूटेंगे।।
व्यभिचारी भी अपने विचारों से
स्वस्थ समाज निर्माण के नव स्वप्न बुनेंगे।।
जो लोहे के वृक्ष हरे हों तो...
अकर्मण्यता के भी हिम गिरी से
सफलता की मरीचि फूटेगी।।
और फिर...
भ्रष्टाचार रुपी इस पंकिल जग में
भूतल पे फिर से अमरावती उतरेगी।।

egRokdkk

मंजिल क्षितिज के पार खड़ी है,
चलने अभी हैं सहस्त्रों कदम
आशा और उत्साह के घट को ढोने हैं
महत्वाकांक्षाओं की रेतीली भू पे।।
फिर से जुटाने हैं पुष्प खमंडल में,
परिश्रम और पुण्य से सिंचित
होगी यह कर्मभूमि
लगेंगे जिसपे बाग सफलता के
प्रखर-प्रचंड तेज से होगी आप्लावित
महत्वाकांक्षों की यह मरुभूमि।।

शुभम शेखर

tṣ u; wdk FkekḥVj

दिव्यानन्द*

गंगा ढाबा जेएनयू का थर्मामीटर है। थर्मामीटर को मुंह या कांख में लगाने से जिस्म के तापमान का अंदाजा हासिल होता है। आप गंगा ढाबा पहुंचिए। कुछ वक्फे तक अपने-आप को वहां की आबो-हवा में हिलने-मिलने दीजिये और आप पाएंगे, बिना मुंह लगाए या कांख सटाए जेएनयू का टेम्परेचर रिकॉर्ड हो गया है। लेकिन यह रिकॉर्ड सबको नहीं मिल सकता। उनको तो कतई नहीं जिन्होंने यहां न्यूनतम अटेंडेंस पूरा न किया हो। इस ढाबे के कोने अतरों में जेएनयू के मौजूदा और भूतपूर्व अड्डेबाजों की रूहें बसती हैं। मैं कयास लगाता हूँ कि जेएनयू कल्चर से जुड़े किसी पहलू का पहला ड्राफ्ट इसी ढाबे पर पास हुआ होगा। कई मैराथन बैठकें हुई होंगी। बेहिसाब बहस-मुबाहिसों के बाद उसका रूप तय हुआ होगा। इस तरह यह ढाबा जिस जेएनयू को हम आज जानते हैं उसके बनने की प्रक्रिया का साक्षी रहा है। सोचता हूँ, कोई जगह जो अपने मामूलीपन की वहज से नामालूम रह जाती सिर्फ कुछ खास इंसानी सरगर्मियों के बायस से कितनी मानीखेज हो जाती है। इससे पता चलता है, जगहों का अपना कोई अर्थ नहीं होता। वह अर्थ धीरे-धीरे पैदा किया जाता है। जगहों की अपनी भूमिका बस इतनी है कि इंतखाब के वक्त वह पसंद और सहूलियत के मुताल्लिक और जगहों से ऊपर था।

जीने के लिए कुछ चीजों की तलब जरूरी है। गंगा ढाबा जेएनयू में उसी जरूरी तलब का हिस्सा है। दूर से सरसरी तौर पर देखिये तो लगता है यहां क्या है! कुछ भी तो नहीं। सड़क से हटकर कटोरे के आकार का धंसा हुआ और चंद बबूल के पेड़ों से घिरा हुआ बेतरतीब जमीन का एक खिन्ता। जिसमें पत्थरों के कई अनगढ़ टुकड़े अपने तन-मन की सुध भूले लापरवाही से इधर-उधर लुढ़के पड़े हों। वहां बैठने की कुछ सीमेंटेड बैठकियां हैं जो हमेशा एक-दूसरे की ओर मुंह बाये तब तक खामोश पड़ी रहती हैं जब तक शाम नहीं हो जाती। शाम होते ही वहां के बैठकबाजों के साथ ये बबूल के चुप्पा पेड़ और जासूसों की तरह हर तरफ फैले सीमेंटेड और पत्थरों के टुकड़े बोलने-बतियाने लगते हैं। शाम ढलने का सबसे ज्यादा इंतजार इन्हें ही होता है। बाहर से आनेवालों को कई दफा मैंने कहते हुए सुना, "यही गंगा ढाबा है! क्या है यहां जी! दू-चार ठो दूकान और लौंडों-लपाड़ियों का हा-हा, ही-ही! खामखा हल्ला किये थे

*लेखक भारतीय भाषा केन्द्र, जेएनयू के छात्र हैं।

यार! गंगा ढाबा ऐसा तो वैसा! एकदम्मे खंडहर बुझाता है! हेह!" मैं कभी वहां का अडीबाज नहीं रहा। अडीबाजों की टोलियां अब दिखती भी कम हैं। जेएनयू में दो-तीन साल बिता चुका हर विद्यार्थी आपको यह कहते हुए मिलेगा, "अब क्या देखते हो। अब तो कुछ भी नहीं बचा है। एक जमाना था, जब गंगा ढाबा था और बस गंगा ढाबा था। और वो वक्त बस अभी-अभी गुजरा है। बस तुम्हारे आने के कुछ दिन पहले की बात है। वो गोल्डन पीरियड था, गंगा ढाबा का।" प्रकारांतर से वो कह रहा होता है कि बात सिर्फ गंगा ढाबा की नहीं, जेएनयू की भी है। जो जेएनयू तुम्हारे आने के पहले था, वो अब कहां! तुमने उस जेएनयू को मिस कर दिया। यह बात सभी पीढ़ी के हर नस्ल के विद्यार्थी को सुननी पड़ती है। वह चाहे नब्बे के दशक का रहा हो या आज का। वाममार्गी हो या दक्षिणमार्गी। ये सब कहने वाले छात्र का अंदाज उस बूढ़े की तरह होता है जो बात-बात पर इस बात की ठसक जताता है, "बेटा! तुमने अभी दुनिया देखी कहां है! हम देखें हैं लेकिन तुम्हें क्या बतावें। तुम तो हमें ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा समझे हो। खैर!" गंगा ढाबा के अडीबाज एक लेबल पर क्लासिकल नोशंस में जीने वाले जीव होते हैं। जिन्दगी में वे कुछ छोटा कर ही नहीं सकते। करे न करे लेकिन सोच तो सकते ही नहीं। ये बात दीगर है कि तदर्थ भर्ती के चक्कर में उनके जूते उनसे रहम की अपील करते हैं।

यह ढाबा जेएनयू का अभ्यारण है। बाहरी आदमी एक साथ पूरे जेएनयू की हल्की छवि यहां पा सकता है। उसी तरह जैसे लोग अभ्यारण्य में जंगल देखते हैं। जब शाम गंगा ढाबे पर उतर रही होती है, उस समय जेएनयू के किस्म-किस्म के प्राणी अपनी मांद से अपने को बाहर खींचता हुआ पाते हैं। और फिर जमाने के लिए जो रात होती है वह यहां के अडीबाजों के लिए शाम। इसकी शाम दुनियावी शाम से थोड़ी अलहदा और लंबी होती है। रात की गणना यहां बारह बजे के बाद मुनासिब समझी जाती है। यहां के बैठकबाजों में किसी को अचानक अहसास होता है और वह बाकी लोगों को काल की वर्तमान दशा से परिचित कराता है, "अरे! देखो, दो बज गया। बताओ यार! हद है। कोई साला बोला तक नहीं।" इस तरह फिर जाने का मूड बनाते-बनाते और अंतिम बार चाय पीते-न-पीते तीन बज चुका होता है। समय ठहरता नहीं लेकिन यहां चेतना के किसी कोने में घड़ी की सूई कहीं

अटकी—सी जान पड़ती है। और इस भ्रम का निवारण होते—होते ब्रह्म मुहूर्त आरंभ हो जाता है। यहां के अड़ीबाज जब छुट्टियों में या गाहे—बगाहे घर जाते हैं तो उन्हें बड़ी तकलीफ होती है। पूरा घर ठर—ठर सो रहा होता है और अड़ीबाज की आंखों में नींद नहीं। हलक सिगरेट के धुओं के लिए बेचौन और जी चाय के लिए चटपट। लेकिन घर जितना छोटा शब्द है उसकी मर्यादा उतनी ही बड़ी। वहां ऐसी आवारगी के लिए कहीं जगह नहीं होती।

इस ढाबे की चौहद्दी भारत की तरह ही अशांत और विविध है। एक ओर अस्पताल है, जहां आप किसी बीमारी के उपचार के लिए जाइये पहली दवाई आपको सिट्रिजिन मिलेगी। इस अस्पताल में दो तरह के मरीजों की भारी भी। उमड़ी रहती है। एक वे जो सप्ताह भर से टेस्ट करा रहे हैं और हर दिन शाम के चार बजे रिपोर्ट कलेक्ट कर रहे हैं। रिपोर्ट में सब नॉर्मल है लेकिन डॉक्टर फिर भी तीन तरह की हरी, नीली, पीली दवाइयां कम—से—कम तीन दिन तक लगातार खाने को कहता है। दूसरे मरीज वे होते हैं जिन्हें अचानक किसी दिन किसी और के कहने पर दिव्य ज्ञान होता है कि वो ओवरवेट हो रहा है। फिर तो ऐसे मरीजों को दो ही जगह चौन नसीब होता है। स्टेडियम में कान में इयरपीस ठूंसे दौड़ते कम झटकते हुए और हेल्थ सेंटर के उस निरीह और सर्वाधिक पीड़ित गोलाकार मशीन पर खड़ा होते हुए जो ठीक—ठीक वेट बताकर उसके सपनों को रोज तोड़ देता है। बाद में उसे याद आता है, झोला तो पीठ से उतारे ही नहीं थे। फिर वह कुल वजन में से बैग सहित कपड़े वगैरह का वजन दो—चार किलो कम कर दूसरे दिन फिर से अपने को तौलने के लिए आत्मविश्वास इकट्ठा कर लेता है। इस 'आरोग्य धाम' से निकलते ही बाएं हाथ (दिल्ली की जबान में उलटे हाथ) बिट्टू की दूकान है जो इस ढाबे की नींद जगती और सोती है। मालिक के नाम पर सभी इसे बिट्टू की दूकान बुलाते हैं। मैंने आज तक बिट्टू भाई को हंसते नहीं देखा। तो मेरी बड़ी तमन्ना है कि जेएनयू में रहते हुए मैं यह उपलब्धि भी हासिल कर लूं। बिट्टो भाई जब मोबाइल सिम की स्कीम बताते हैं तो मेरे मन में यह ख्वाहिश जगती है कि काश ! इसी अंदाज में मुझे कविताएँ याद होतीं और फिर मैं बिट्टू भाई की परफॉर्मेंस के सबब से थोड़ी देर पहले अपने बिखरे आत्मविश्वास को समेट अपने को तसल्ली देता हुआ अपना ध्यान कहीं और टिकाने की तरतीब करता हूं।

ढाबे की दूसरी सीमा पर बस स्टैंड है—गंगा बस स्टैंड। सनद रहे, इस स्टैंड से 615 गुजरती है। मेरे बैच के एकमात्र जीवित आलोचक (बाकी सेमेस्टर आलोचक थे। अशोक छोड़ साबका आलोचकीय मसाला मुद्दतों पहले झड़ गया और इस तथ्य को सभी विनम्रता पूर्वक स्वीकारते हैं।

अशोक की आलोचकीय प्रतिभा का पहला लोहा कौशल ने माना और बाकायदा कुछ विशेषणों से नवाजते हुए वह इसके रास्ते से हट गया। और जब कौशू भाई सरेंडर हो गये तो फिर किसकी मजाल कि इस दुर्धर्ष आलोचक के गोरखपुरी तेज के सामने टिक पाये!) अशोक ने इस नामुराद 615 का नाम 'राक्षस' किया है। इस नामकरण का व्युत्पत्तिपरक अर्थ करते हुए आलोचक अशोक ने कहा कि "देखिये ऐसा है कि राक्षस जो है अचानक प्रकट हो जाता है और ये 615 भी पता नहीं कब और किस ओर से अचानक प्रकट हो जाये। तो जो ये नाम मैंने दिया है सो काफी सोच—बूझकर। गुणों का ध्यान कर यह नाम दिया हूं। समझे कि नहीं देव भाई!) ये बात सही है कि जिंदगी में अचानक घटे की तरह 615 आती और जाती है। आप इंतजार करते रहिये नहीं आयेगी और यूं ही स्टैंड पर बैठ जाइये 615 फालतू मैसेज की तरह आती जायेगी। इसकी रफ्तार के बारे में कुछ लिखा नहीं जा सकता। बस ! उसे जाते हुए देखकर महसूस किया जा सकता है। मालूम होता है, 615 अकेले नहीं अपने आस—पास की सारी चीजों को समेटते हुए जाएगी। मैंने सुना कि वन्स अपॉन ए टाइम जब पुरुषोत्तम अग्रवाल यूपीएससी (अन प्रोडकटिबल सर्विस कमीशन) के मेम्बरान हुआ करते थे तो साक्षात्कार के दौरान एक जेएनयू के 'काबिल और योग्य' अभ्यर्थी से उन्होंने सवाल दागा, "बताओ! 615 का रूट क्या है और जेएनयू में उसके कितने स्टॉप हैं?" अभ्यर्थी हैरान—परेशान सोचने लगा, साला ! इस बारे में जी.एस. अतिरिक्तांक के किसी अंक में कोई चर्चा ही नहीं है।

ढाबे की बची हुई चौहद्दी विद्रोही जी से पूरी होती है। वे अपने—आप में एक बॉर्डर हैं। बॉर्डर नहीं होते तो कब के ढह गये होते। कोई खेल है, अनवरत तीन दशकों से अड़ीबाजी करना। तो वे मुन्तजिर हैं कि कोई उपयुक्त और प्रतिभाशाली अड़ीबाज आये और मेरी वर्षों की विरासत को संभाले। लेकिन फिलहाल कोई आसार नजर नहीं आता। वैसे भी अब जेएनयू प्रतिभावानों के लिए कम ही जाना जाता है। जेएनयू की क्रांतिकारी राजनीति की कारतूस को खाली हुए एक अरसा होने को है। गंगा ढाबा उन दिनों की याद में कभी—कभी आपको हौले—हौले सिसकते हुए मिलेगा। यहां की जटिल जिंदगी का भाष्य है, गंगा ढाबा। हर नये लोगों को गंगा ढाबा जेएनयू के एक तीर्थ की हैसियत से दिखाया जाता है और देखने वाले के पास यदि संजीदा रूह हुई तो वो इसे देखता भी इसी तरह है, नहीं तो उसे बस यहां एक बेतरतीब भीड़ दिखती है। जैसी भीड़ महानगर में आप कहीं भी देख सकते हैं। यहां एक पैरेलल यूनिवर्सिटी चलती है। इसका एक निर्धारित कोर्स अपने—अपने अध्यापकों और क्लासमेटों की जी खोल निंदा है, जो जेएनयू की बौद्धिक ज़बान में

आलोचना कही जाती है। अब आलोचना तो कोई बुरी चीज हुई नहीं। वह तो यहां संस्कृति समीक्षा का हिस्सा माना गया है और प्रोफेसर और क्लासमेट संस्कृति से बाहर तो है नहीं ! यहां नये लोगों को पहले मजा नहीं आता। आपको कई बार लगेगा यहां सब अपने में मशगूल हैं। कोई किसी की बात सुन नहीं रहा और यदि सुन रहा है तो उसपर ध्यान तो बिल्कुल नहीं दे रहा। ऐसा है नहीं। यहां लोग सुनाने कम, सुनने ज्यादा आते हैं। यह बात आपको अगले रोज मालूम होगी जब एक पोस्टर में आपकी बात का हवाला मिलेगा और फिर दुनिया-जहान से जोड़ते हुए भरपूर लानत-मलामत की जाएगी। एक राहत ये है कि बगल में गंगा हॉस्टल है। लेकिन ये राहत सबके लिए नहीं है। जिनके जाननेवाले ही वहां नहीं उनके लिए तो वह बस एक हॉस्टल है। और हॉस्टल तो हॉस्टल है। जैसा अपना, वैसा ही औरों का। एक बार पुनः पुरुषोत्तम अग्रवाल राजभाषा दिवस के मौके पर आर्ट्स एंड एस्थेटिक्स के सभागार में बॉच रहे थे, “उन दिनों मैं गंगा हॉस्टल में रहता था...”, सभी लगे खिलखिलाने कि पुरुषोत्तम अग्रवाल ने खुलासा किया, “सुनो तो सही। उस समय वो बॉयज हॉस्टल हुआ करता था।” इस तरह गंगा के बारे में एक नया तथ्य मुझे मालूम हुआ और इसे मैंने राजभाषा दिवस की उपलब्धि के रूप में ग्रहण किया। मैंने सोचा, इस गंगा हॉस्टल ने दोनों दुनियाओं को समय-समय पर पनाह दी है। ढाबे तो जेएनयू में कई हैं लेकिन गंगा उन सबके बीच समीक्षा ढाबा है। जेएनयू और दुनिया-जहान के जीवन और सियासत के हर रेशे को यहां उधेड़ा जाता है। उधेड़े रेशों को फिर ताश के पत्तों की तरह संगी अड़ीबाजों में बांटा जाता है। और यह मीटिंग इस मानसिक सुख के साथ संपन्न मान ली जाती है कि -

“मेरी हिम्मत तो देखिये मेरी तबीयत तो देखिये
बात जो सुलझ जाती है फिर से उलझाता हूँ मैं।”

जेएनयू के अधिकांश प्रोफेसरों ने कसम खा रखी है, सेंटर, स्कूल, कैंटीन और ऑडिटोरियम के बाहर जहां विद्यार्थी होंगे, वहां हम कैसे हो सकते हैं ! यह कसम गंगा ढाबे पर भी निभायी जाती है। कामगार भी वहां आपको कम मिलेगा। बस विद्यार्थी और विद्यार्थी। मानवेतर प्राणियों में वहां कुत्ते और कौवे मिलेंगे। आपकी ही तरह किसी बहसों-मुबाहिसें में मशगूल। लेकिन वे थोड़े असभ्य हुए ! इसलिए कभी-कभी

वह मनुष्य सबसे बेहतरीन जिंदगी बसर करता है जो
जरूरतों के लिए किसी दूसरे पर भरोसा नहीं करता।

ऊँची-आवाज में लड़ने-झगड़ने लगते हैं। हम पढ़ने-लिखने वाले माने हुए सभ्य ठहरे इसलिए इन चीजों से बचते हैं। यहां का वायुमंडल सिगरेट के धुओं और चाय की गर्म भापों से रचता है। कोने-अतरे सिगरेट के और भी संस्करण वायुमंडल को भारी और गंभीर बनाते हैं। एक रूढ़-सी समझ यहां यह भी है कि जिसने नशा नहीं किया वह बौद्धिक कैसा!

कल के परचे में किसकी बेहुर्मती होनी है और कितनी होनी है, यह खबर अगर कहीं से लीक हो सकती है तो वह गंगा ढाबा है। अगर आप खोजनहार हुए तो यहां से वे सूत्र पा सकते हैं। पूरे जेएनयू में आपको शुद्ध कुछ नहीं मिलेगा। जो मिलेगा, मुश्तरका तहजीब का मिलेगा। अर्थात् मिला-जुला। इसलिए गंगा ढाबा पर आपको न शुद्ध शाकाहारी की दूकान मिलेगी और न शुद्ध मांसाहारी की। मिलेगी दोनों। एक अजीब इत्तफ़ाक है। जैसे जिन्दगी ही इत्तफ़ाक है। जो चीज गंगा ढाबे पर सबसे ज्यादा डिमांडिंग है वो यहां मिलती ही नहीं। आधिकारिक तौर पर तो बिल्कुल नहीं। सिगरेट ! किसी से मिलना हो, किसी को मिलाना हो, कुछ खरीदना हो, कुछ बेचना हो, अपने को डॉक्टर से दिखाना हो या किसी को दिखलाना हो, जुनियारान को ज्ञान(?) देना हो, गाड़ी-ऑटो पकड़ना हो, पुतला दहन करना हो, किसी जुलूस का आगाज़ करना हो आदि-इत्यादि, जैसे जो काम मैंने गिनाये हैं उनमें से कई और जगहों पर भी हो सकते हैं लेकिन एक साथ इतनी विविधताओं को अंजाम के साथ गंगा ढाबा ही साध सकता है।

गंगा ढाबा जेएनयू की दूसरी और सबसे जरूरी पाठशाला है। राजनीति के गाढ़े दिनों में गंगा ढाबा अपने सर्वोत्तम मुकाम पर होता है। उसके भाग्य पर और ढाबे इर्ष्या करते हैं लेकिन उससे कभी हुआ है कुछ। इर्ष्या तो दिल बहलाव है। जिन्दगी जैसी बात है कि जो जेएनयू में आया है एक दिन इससे बाहर जायेगा। लेकिन हम दुनिया से अपने साथ कुछ नहीं ले जा सकते जबकि जेएनयू छूटने के बाद गंगा ढाबा सबके साथ थोड़ा-थोड़ा जायेगा और फिर भी बचा रहेगा। जेएनयू में इल्म की तलाश में भटकते ‘ब्रह्मराक्षस’ के दक्षिण से आये बटुक की तरह फिर एक दिन यह ढाबा किसी को अपनी गोद में बिठा लेगा। ये गंगा ढाबा किसी गंतव्य की तरह नहीं एक सफ़र की तरह है। इसलिए ये सिलसिला भी यूँ ही चलता रहेगा...।

यदि आपके हृदय से मनुष्यता नहीं तो धर्म और
ईश्वर में आस्था रखने का कोई अर्थ नहीं है।

ih dh ,d vkj jkr

— गंगा सहाय मीणा*



21वीं सदी का पहला दशक बीत जाने के बाद के एक बरस का पूस का महीना।

हतेभर की कोशिश के बाद आखिरकार भूरी की सरसों भराने की बारी आ गई। रामजीलाल पटेल ने मिस कॉल करके हरकेश मास्टर को बताया, 'माइसाब, आज र्यात आठ बजे से तमारो नंबरअ!'

शिक्षामित्र के रूप में हरकेश जिस गाँव में काम कर रहा था, वह गंगापुर से दो सौ किलोमीटर से ज्यादा ही होगा। वह हर शनिवार शाम अपने गाँव आ जाता था और सोमवार सुबह पाँच बजे वाली बस से चला जाता था। अर्धवार्षिक परीक्षाओं की वजह से न इतनी आसानी से छुट्टी मिल सकती थी और न ही इतनी जल्दी गाँव पहुंचा जा सकता था। समझ नहीं पाया, हां करे या ना! दस दिन बाद सर्दी की छुट्टियों में तो गाँव जाना ही था लेकिन तब तक देर हो जाएगी।

उसने भूरी को पड़ोसी के मोबाइल पर फोन मिलाकर राय ली तो भूरी ने थोड़े संकोच के साथ 'हां' कर दिया। हरकेश ने अपनी जीजी' से भी बात की और इस बिंदु पर सहमति बनी कि सरसों आज ही भराएँगे लेकिन कूड़ मोड़ने के लिए एक मजूर भी कर लेंगे।

भूरी मजूर कर आई। तीन सौ रुपये में मजूर हुआ। आधी रात के लिए।

भूरी ने दोनों बच्चों को खाना खिलाकर सुलाया। भैंस और पडिया को साँदी-पाणी दिया। दोनों, सास-बहू, ने खाना खाया। इतने में रमेश बैरवा भी आ पहुँचा। भूरी ने एक शॉल और उसकी सास ने एक पुराना कंबल लिया जो हरकेश के पिताजी कुंभ के मेले से लाये थे। एक टॉर्च और गैस लेकर तीनों बगीचे वाले खेत की ओर चले।

चार-पाँच साल पहले तक बगीचे वाले कुएँ में काम लायक पाणी हो जाता था। दस-बारह साल पहले तो यहां पाणी की कोई कमी नहीं थी। सवाई माधोपुर-करौली जिले राजस्थान में भले ही आते हों, लेकिन यहां पाणी की किल्लत नहीं रही। पाँचना बाँध से कई नहरें निकल रही थीं। ज्यादातर गाँवों में बड़े तालाब थे जो लगभग हर साल भर जाया करते थे। गंगापुर से करौली जाने वाली सड़क पर बसे, सरसों के

बीज के लिए प्रसिद्ध, मीणा पहाड़ी गाँव में उन दिनों दस से पंद्रह हाथ पर कुओं में पाणी था। सब लोग लेज⁴—बाल्टी लेकर कुओं पर नहाने जाते थे। अब गाँव में नल लग गए और कुंडे खुद गए। सब घर पर ही नहाते हैं। पूरा गाँव कीचड़भरी नाली में तब्दील हो गया है। गाँव के मुख्य रास्तों पर सीमेंट की सड़क तो बन गई लेकिन नालियां नहीं बनाई गईं। सड़क पर बढ़ रहे कीचड़ ने शहरों के बाशिंदे विभिन्न प्रजातियों के मच्छरों को न्योता दिया और लुभाया है। वैसे भी अब शहरों में मच्छरों का गुजारा इतना आसान नहीं रहा।

जब कुओं में पाणी था तो गाँव में सिंचाई भी काफी आसान थी। हर कुटुंब के हर इलाके के खेतों के साथ कुएँ हैं। बुजुर्गों ने इन कुओं को खुद ही खोदा और बाँधा था। पानी कम होने पर वे खुद ही बल्ली लगा लेते थे। बगीचे वाले कुएँ को खोदने और बाँधने में हरकेश के पिताजी ने सबसे ज्यादा काम किया था। खुद महीनेभर तक कुएँ में उतरे रहे। कुओं में ऊपर पानी होने का फायदा यह था कि साधारण इंजनों द्वारा आसानी से सिंचाई हो जाती थी जिसमें प्रतिघंटे औसतन एक लीटर डीजल जलता था। यानी किफायती और आसान। सरसों को चाहिए भी कितने पानी — एक या दो। इंजनों से पहले नाव⁶ चलाकर सिंचाई की जाती थी जो काफी मुश्किल थी। उसमें लगी मेहनत को याद कर बड़े-बूढ़े आज भी सिहर उठते हैं।

मीणा पहाड़ी के दक्षिण पूर्व में एक पहाड़ी थी और उसके थोड़ा आगे लंबा ढूंगर। ढूंगर, गाँव और खेतों से निकलने वाले बारिश के पानी के सारे रास्ते आपस में मिलते हुए तालाब पर पहुँचते थे। इससे लगभग एक किलोमीटर लंबा-चौड़ा तालाब हर साल भर जाता था। एक बार तो तालाब टूटने की नौबत आ गई। आधी रात को जाकर गाँव वालों ने समय रहते कोने वाली मोरी खोल दी और तालाब टूटने से बचा लिया।

धीरे-धीरे इस जनजाति बहुल गाँव में भी लोगों में स्वार्थपरता घर करती गई और उन्होंने अपने खेत के पास से गुजरने वाले बरसाती नाले की तरफ अपने-अपने खेतों को बढ़ाना शुरू किया, अपने खेतों का पानी मजबूत डौड़⁷ बनाकर अपने खेतों में ही रोक लिया तथा जिन लोगों के खेतों में होकर पानी बड़े तालाब तक पहुँचता था, उन्होंने भी डौड़ कर

*y[kd %भारतीय भाषा केन्द्र, जेएनयू में सहायक प्रोफेसर हैं।

दी। फलस्वरूप तालाब का भरना बंद हो गया। जिससे पूरे गाँव में जलस्तर नीचे जाता रहा और एक दशक से भी कम समय में भरे रहने वाले कुएँ हमेशा के लिए सूख गए।

इसके बाद गाँव के बड़े किसानों ने बोरिंग करना शुरू किया। बोरिंग से सिंचाई महँगी हुई और मुश्किल भी। एक बोर करने में तीन-चार लाख तक का खर्च सामान्य था। उस पर बोर फेल होने का खतरा अलग।

परिणाम यह हुआ कि बोर मालिकों ने दूसरे किसानों के खेतों में सिंचाई कर इस खर्च को निकालना शुरू कर दिया। गाँव में कुल मिलाकर आधा दर्जन ही बोर थे इसलिए किसानों की भी मजबूरी थी उनसे महंगी रेट पर पाणी लेने की। बोर मालिक दिन में अपने खेतों को भरते थे और रात में दूसरे किसानों को पाणी देते। हरकेश और रामजीलाल के बीच चार सौ रुपये प्रतिघंटे की रेट तय हुई थी।

हरकेश के पिताजी को गुजरे 15 साल हो गए थे। पिताजी के जाने के बाद जीजी भी तेजी से बूढ़ी हुई। उनके पास कुल साढ़े पाँच बीघा जमीन थी। बहन की शादी करने में चार लाख से ऊपर कर्ज हो गया था। दो रुपया सैंकड़ा की कटतीमिती⁸ की ब्याज दर ने पूरे परिवार का हाजमा खराब कर रखा था। जमीन में गुजारा संभव नहीं था, इसलिए पहले हरकेश की जीजी और अब भूरी मिस्टॉल⁹ पर काम करती थी। दोनों ने मजूरी भी खूब की है। जीजी का शरीर अब मजूरी करने लायक नहीं रहा। वह थोड़ा-बहुत बच्चों और घर का काम देख लेती थी। छोटे भाई को हरकेश ने बी.ए. के बाद जयपुर तैयारी करने भेज दिया। घर में आदमी कम होने की वजह से बीच-बीच में हरकेश के परिवार को भी मजूर की जरूरत पड़ जाती थी। खासतौर पर लावणी¹⁰ के दिनों में।

बगीचे वाला खेत एक बीघा से कुछ कम ही था। हरकेश सबको पौण बीघा बताता। नाप के हिसाब से यह सौलह बिसवा था।

भूरी पहुँचते ही झम्न को पाणी चालू करने के लिए कह आई। रामजीलाल पटेल ने बोर पर झम्न को रखा हुआ था। झम्न के पिताजी ने रामजीलाल पटेल से बेटी की शादी और छोटे बेटे को बी. एड. कराने के लिए कर्ज लिया था, जो वह अभी तक चुका नहीं पाया था।

भूरी की सास खेत किनारे बगीचे की डौड़ पर कंबल ओढ़कर बैठ गई। साढ़े नौ बजे बोर चालू हुआ। भूरी ने गैस क्यारी के पास वाली डौड़ पर रख दिया। भूरी और रमेश सरसों के खेत में कूड़ मोड़ने लगे।

उतरते पूस की काली रात थी। थोड़ा कोहरा भी था। ठंड जोरों पर थी। शाम से पर्वाई पौन¹¹ चल रही थी।

भूरी पानी में उतरी हुई थी। उसकी सास बीच-बीच में मठार¹² देती थी। भूरी रमेश से कहती, 'रमेश, देखतो रहज्यो। हड़ाई भर जाय तो बता दीज्यो। मैं पाणी दूसरी हड़ाई में मोड़ दूंगी।'।

दो घंटे में लगभग आधा खेत भर गया। रमेश बीच-बीच में बीड़ी जलाकर सर्दी से टक्कर ले रहा था। भूरी सलवार कुर्ते में थी जो उसने हरकेश के साथ नौकरी पर जाने के लिए सिलवाये थे। उसकी सलवार घुटने से थोड़ा ऊपर तक भीगी हुई थी। उसने टॉर्च गले में लटका रखी थी।

सहसा भूरी को महसूस हुआ कि ये वाली क्यारी भरने में कुछ ज्यादा वक्त लग रहा है। उसने रमेश से कहा कि 'देख कहीं पाणी फूट्यो तो नीय?' रमेश ने हर तरफ देखा लेकिन कहीं पाणी फूटा नहीं मिला।

भूरी रमेश के जवाब से संतुष्ट नहीं हुई। टॉर्च से उसने खुद जाँच की। पाणी कहीं फूटा नहीं था। उसने गौर से बरे¹³ का भी निरीक्षण किया। वह भी नहीं फूटा था। फिर उसने पाइप के मुँह पर टॉर्च डालकर देखा। वह देखकर सन्न रह गई। उसने देखा कि पानी की चाल आधी से कम हो गई है। उसे ये झम्न की शरारत महसूस हुई। वह पाणी पर रमेश को लगाकर सीधे रास्ते से दौड़ती हुई बोर पर गई। देखा, झम्न कमरेनुमा तिवारे¹⁴ में सो रहा था और बोर में पानी पूरा आ रहा था।

भूरी को कुछ समझ में नहीं आ रहा था और कुल पलों तक वह किंकर्तव्यविमूढ़ होकर खड़ी रही। अचानक उसके दिमाग में कुछ कौंधा। उसने पाइप के साथ-साथ खेत की ओर चलना शुरू किया। बोर से खेत की दूरी एक किलोमीटर से ऊपर ही थी। भूरी पाइप के किनारे-किनारे चलती गई और बीच-बीच में पाइप को छूकर देखती रही। पानी पूरा आ रहा था।

भूरी ने जर्सी पहनी हुई थी और शॉल लपेटा हुआ था लेकिन ठितुरनभरी हवा ने उसे कँपकँपाना शुरू कर दिया। घुटने से ऊपर तक भीगी सलवार पर लग रही हवा शीत का क्षेत्र विस्तार कर रही थी। वह खेत के एकदम करीब पहुंच गई लेकिन उसे पाइप में कोई दिक्कत नहीं मिली।

'छपाक' की आवाज के साथ अचानक उसका पाँव पाणी में पड़ा। वह रुकी। उसने टॉर्च जलाकर देखा। भैरो के खेत में पाणी भरा हुआ था। उसको समझते देर नहीं लगी। थोड़ी आगे पाइप फटा हुआ था। भूरी समझ नहीं पाई कि पाइप कैसे फटा होगा और कैसे बहते पाणी को रोके! एक बार तो उसने सोचा वापस जाकर झम्न को जगाए और पाणी बंद करने के लिए कहे। लेकिन अगले ही पल उसे खयाल आया कि पाणी बंद करवा दिया तो उनका खेत कैसे भरेगा! और पता चला फिर नंबर ही न आए!

उसने सिर और कानों को ढककर ओढ़ा हुआ शॉल उतारा और टूटा पाइप बांधने में जुट गई। बाँधने की प्रक्रिया में पाणी की पिचकारियाँ उसको भिगो रही थी। उसने कुछ मिनटों की मशक्कत के बाद टूटे हुए पाइप को कुछ इस तरह से बाँध दिया कि उसमें से पानी बहना लगभग बंद हो गया। बस शॉल में से रिस-रिसकर थोड़ा पानी निकल रहा था।

जब पाइप की मरम्मत हो गई तो भूरी को अहसास हुआ, वह पूरी तरह भीग चुकी थी। वह ज्यों-ज्यों खेत की तरफ बढ़ रही थी, पवाई पौन उसकी हड्डियों तक पहुँचती चली जा रही थी। जर्सी भीग चुकी थी और बालों में भी पाणी पहुँच चुका था। उसने खेत में पहुँचकर देखा, पाणी की चाल ठीक थी।

भूरी की बूढ़ी सास खुद को जगाए रखने के लिए आग जलाकर बैठी थी और कोई मीणावाटी गीत गुनगुना रही थी। रमेश बीड़ी पी रहा था। उसे रमेश पर गुस्सा आया कि पैसे तो पूरे ले लेगा लेकिन ठीक से कूड़ नहीं मोड़ रहा।

आधी से ज्यादा रात जा चुकी थी। जब भूरी को असहनीय ठंड महसूस हुई तो वह अपनी सास के पास आग तापने पहुँच गई। अब खेत थोड़ा ही बचा था। लेकिन शीत खाल, मौस और हड्डियों को चीरता हुआ बदन के आर-पार हो रहा था। सास के पास सुलगती आग में उसे सुकून महसूस होने लगा। उसे याद आई वे तमाम रातों जो उसने और हरकेश ने खेतों पर कूड़ मोड़ते हुए बिताई थी, दोनों ने एक-दूसरे को गरम किया था और सुबह संतुष्ट होकर घर लौटे थे।

आग के पास बैठने से भूरी को थोड़ी राहत जरूर मिली लेकिन इससे उसके शरीर में आलस छाने लगा। उसकी हाथों और पाँवों की अंगुलियाँ सूज गई थी। उनमें खून जम गया। उसने आग में अपने हाथ-पाँव इतने करीब से सेंके कि ऊपर से खाल जलने को हो गई और अंदर खून बर्फ बना हुआ था, जैसे गीले आटे की रोटी को तेज आँच पर सेंकने पर होता है।

उसका दोबारा पानी में उतरने का साहस नहीं हो रहा था लेकिन जैसे ही उसे चार सौ रुपये घंटे का अहसास हुआ, वह पानी में उतर गई और किसी युद्ध में अपने पक्ष के बचे आखिरी योद्धा की भाँति तब तक कूड़ मोड़ती रही जब तक खेत भर नहीं गया।

लगभग तीन बजे थे। उसकी बूढ़ी सास बुझ चुके अलाव के पास आम के पेड़ से पीठ लगाकर ऊँघ रही थी। रमेश ने घर लौटने की तैयारी के रूप में आखिरी बीड़ी

जलाली थी। भूरी भीगे कपड़ों में पाणी बंद कराने के लिए बोर की तरफ बढ़ी चली जा रही थी।

ifjp; & राजस्थान के सवाई माधोपुर जिले के सेवा गाँव में किसान परिवार में 10 जुलाई 1982 को जन्म। स्थानीय स्कूल-कॉलेजों से स्नातक की पढ़ाई। एम.ए., ए.फिल. और पीएच.डी. दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से। केन्द्रीय हिंदी संस्थान से पोस्ट एम.ए. डिप्लोमा इन मास कम्युनिकेशन एण्ड जर्नलिज्म. दिल्ली विश्वविद्यालय और पांडिचेरी विश्वविद्यालय में अध्यापन के बाद 2007 से जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में अध्यापन। पत्र-पत्रिकाओं में नियमित लेखन। बहुवचन, अरावली उद्घोष, शब्दयोग, कथादेश, जनपथ, युद्धरत आम आदमी, सबलोग, समसामयिक सृजन, इंडिया टुडे आदि पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित। जनसत्ता, हिंदुस्तान, राष्ट्रीय सहारा, अमर उजाला, दैनिक भास्कर, राजस्थान पत्रिका, देशबंधु, जनसंदेश टाइम्स, प्रभात खबर आदि अखबारों में समसामयिक विषयों पर नियमित लेखन। 'आदिवासी साहित्य विमर्श' (सं.) पुस्तक प्रकाशित। कई शोध-पत्रों के संपादकीय सलाहकार। दलित आदिवासी संवाद लेखन पुरस्कार 2011 से सम्मानित।

। nHk %

1. मां।
2. सिंचाई करना। कूड़ों में विभाजित खेत में सिंचाई के दौरान एक कूड़ से दूसरे कूड़ में पानी मोड़ने के कारण यह शब्द प्रचलन में आया होगा।
3. छोटा गैस सिलेंडर जिसमें मेंटल लगाकर पेट्रोमेक्स के रूप में उजाला करने के लिए काम में लिया जाता है।
4. रस्सी।
5. कुआँ सूख जाने पर उसके तल में जाकर चारों तरफ से सुरंगनुमा गढ़वे कर पानी के बाधित रास्तों को खोलना जिससे रिस-रिसकर पानी कुआँ में आ सके।
6. सिंचाई का पारंपरिक तरीका जिसमें चमड़े के चड़स की मदद से बैलों द्वारा सिंचाई की जाती है।
7. मेड़।
8. चक्रवृद्धि।
9. मास्टररॉल।
10. फसल कटाई।
11. पूर्व से चलने वाली हवा।
12. गला साफ करने के लिए सायास निकाली गई आवाज, जिससे कोई व्यक्ति अपनी उपस्थिति का अहसास कराता है।
13. बरा- खेत में पानी जाने का मुख्य रास्ता।
14. समाधि स्थल।

bl'oj dk l i uk

ज्योति*



अपने कपड़ों में लगे रक्त की गंध से वह भागने का प्रयास कर रहे थे। इसी प्रयत्न में वे बहुत देर से चले जा रहे थे। उन्हें स्वयं भी नहीं पता था कि उनके पग किस डगर और पथ पर हैं। जहां मस्तिष्क कहता वे वहीं पग बढ़ा देते।

वातावरण में तेज़ धूप थी और गरम लू सौगात के रूप में हर जगह फैली हुई थी। सूर्य मानों कुपित होकर आग उगल रहा था। भूमि की सूखी और बेजान घास एक चिंगारी की प्रतीक्षा में बैठी हुई थी। आकाश का सूनापन अपने में विशाल हो चला था। दृष्टि आसमान की ओर देख नहीं सकती थी। और तो और कहीं भी बादल का एक छींटा तक नहीं था।

खगों का भी न तो अता था और न ही पता। कदापि किन्हीं तरुओं की शीतल छाया में किन्हीं ओट में वे अपने जीवन की इस भीषण गर्मी से रक्षा कर रहे थे।

कुछ क्षणों के लिए उन्होंने इस माहौल में अपने दायें हाथ की ओट माथे पर बनाई और चारों ओर देखा। निर्जल और निर्जन भूमि दूर प्रदेश तक फैली हुई थी। वे भली प्रकार से परिचित थे कि ये युद्ध का परिणाम है। इसी के चलते आवरण में इस प्रकार की स्थिति बन पड़ी है। पर वे तो घर की ओर लौट रहे हैं। वे इन सब के बारे में पुनः नहीं सोचना चाहते। उनके ईश्वर मन ने कहा, "ये आप किस प्रकार के स्मृति चित्र में उलझ गए? ये आपका कार्य नहीं। आप ईश्वर हैं। अतः ईश्वर के समान ही व्यवहार करें।"

मानव मन कुछ न बोल सका। वह क्षत-विक्षत था। युद्ध के कारण उसकी मानवता पर गहरा आघात पहुंचा था और विषाद की खाई के गुप्प अंधेरे में घुट रहा था।

पर इतना तय था कि ये 'अवतार' मन की अकुलाहट के कारण अस्थिर था। वह सूर्य को आदेश देना चाहते थे कि अपना सूर्यताप कम करे ताकि सभी को आराम मिले। पर न जाने क्या सोचकर आदेश नहीं दिया। तीन चार लंबी लंबी सांसें लेने के पश्चात आगे बढ़ गए।

उनकी पीली और चमकदार पवित्र धोती पर रक्त के धब्बे अब तक सूर्य ताप के कारण सुखकर काले बन गए थे और एक तीव्र गंध लेकर उनके साथ-साथ चल रहे थे। बहुमूल्य आभूषण और मोतियों की मालाएं उनको अब सहन

नहीं हो रही थीं। माथे के ऊपर रखा स्वर्ण मुकुट जिसमें कि मोहक मोर पंख लगा था, वह भी कदापि युद्ध भूमि में कहीं गिर चुका था। इस बात की उनको खबर भी नहीं थी।

नमकीन बहते स्वेद से उनकी श्याम वर्ण चमकीली देह छिल गई थी। उनके चलने पर हिलते दुलते आभूषण त्वचा की छिलन पर भयंकर पीड़ा छोड़ रहे थे। थोड़ी देर बाद वे उकता गए और मालाओं को तीव्रता से खींच कर नीचे फेंक दिया। जहां-जहां वे मालाएं गिरीं तहां तहां हरी घास उग आई और जहां मुकुट गिरा वहाँ हरा भरा किसी प्रकार का पेड़ यकायक उग आया। विचित्र बात थी कि ईश्वर के इस अवतार ने अपनी दिव्यता के प्रमाण को धीरे धीरे अपने से अलग कर दिया था। कदापि वे अवतार की वेषभूषा से अलग होना चाह रहे थे।

उद्विग्न मन ने उन्हें पस्त कर दिया था। थोड़ी देर जब उन्होंने कानों को टिका कर रखा तो एक संवाद की भिनभिनाहट सुनाई पड़ी। कानों को दायें और बाएँ घुमाया। पर उन्हें आवाज़ का पता नहीं चला। ध्यान लगाया। नेत्रों को बंद किया तो पता चला कि उनके अंतर में ही संवाद गूँज रहे थे।

मनुष्य मन और दिव्य मन के मध्य। देव मन ने कहा, "आप ऐसा बिलकुल नहीं कर सकते। लोग क्या कहेंगे कि उनके ईश्वर को क्या हो गया है! आप ईश्वर हैं। सर्वशक्तिमान। सर्वज्ञ। सर्वव्यापी। समस्त सृष्टि के पालनकर्ता होने के पश्चात भी आप इस व्यवहार में जकड़ गए हैं। अपनी बनाई सृष्टि की चिंता करना ठीक नहीं। मत सोचिए कुछ भी। युद्ध तो होना निश्चित था ही। याद रखिये, आप एक ईश्वर हैं। लोगों की कामना पूरी करने वाले। एक देवता अवतार।"

मनुष्य मन के नेत्र अधखुले थे। वह देव मन की बातों को सुनकर कुछ न बोल सका। क्या कहता? ईश्वर मन तो महान होता है। उसे कौन काट सकता है! पर इतना निश्चित था कि जो भीषण युद्ध अभी कुछ समय पहले हुआ उसके विषाद के दल दल में वे धँसे चले जा रहे थे।

इस क्षण के बाद उन्होंने पग फिर आगे बढ़ा दिये। इस बार उनकी चेष्टा में बहुत ऊर्जा थी। युद्ध के शस्त्रों के

*लेखिका भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू की छात्रा है।

प्रयोग का परिणाम मानव और पृथ्वी पर समान रूप से पड़ा था। पृथ्वी ने मानो अपने पिता के मरने पर मुंडन करवा लिया है। इस मुंडन में उसने अपने समस्त संसाधनों को खो दिया। कुछ भी नहीं बचा उसके पास। उसके नेत्र भी सूख गए थे।

बहुत देर से चलने के कारण उन्हें सिर चकराने और मितली की स्थिति को देखना पड़ा। आँखें चौंधियाँ गईं। दो पल अनुभव हुआ कि वे गिर जाएंगे।

... और ऐसा हुआ भी।

देवता भूमि पर गिरे या वह मनुष्य। ये पता नहीं चला। पर उनमें से कोई एक गिर गया था। निर्जीव और मूर्च्छित होकर।

अब तक अंधेरा होना आरंभ हो गया था। समय की बेल जब आगे बढ़ी तब सांझ के मुस्काते अंधेरे तले दोनों में से किसी एक को होश आया। नेत्र खोल कर देखा तो उन्होंने अपने आप को हरी हरी पत्तियों से लदे एक वृक्ष के नीचे पाया।

थोड़ा कमर पर बल लगाकर धड़ को उठाया और पीछे पड़े काले पत्थर पर टेक लगा ली। सिर को हौले हौले इधर से उधर घुमाया। कुछ न देख, सुन, सूँघ और अनुभव कर पाने पर नेत्रों को बंद कर लिया।

इस अंतराल को बीतते हुए देरी न लगी और उषा ने दिन के द्वार पर दस्तक दे दी।

आँखें खुलीं तो उनकी थकान हल्की कम हो गई थी। पल को सोचा कि दाऊ भईया को ये संदेश भेज दूँ कि मैं तनिक भी उचित अनुभव नहीं कर रहा। कोई रथ भिजवा दें तो मैं द्वारका आ जाऊँ। पर इस बीहड़ स्थान से कैसे और किससे संदेश भिजवाया जाये, जैसे ही वे इतना सोचने बैठे ही थे कि सिर फिर चकरा उठा। कई तीव्र और भयानक प्रहार उनके मस्तिष्क पर होने लगे। वो तड़प उठे। चक्करों के साथ उनको उल्टी भी होने लगी।

उन्हें इस क्षण यशोदा मैया की स्मृतियों ने घेर लिया। जब वे बाल रूप में थे तभी से लोगों ने उन्हें भगवान कहना शुरू कर दिया था। वो कहाँ कहलाना चाहते थे। मैया उन्हें कतई ईश्वर नहीं मानती थीं। वे तो केवल उन्हें अपना कन्हैया मानती थीं। किसी भी प्रकार के विकट समय में घंटों उनके पास बैठी रहती थीं। माँ अपने बच्चों को कभी भी अकेला नहीं रहने देती। दुख या विपत्ति के समय में तो सबसे पहले आगे खड़ी रहती है। यदि आज यहाँ यशोदा मैया होती तो नजाने उनकी कन्हैया को देख कर क्या दशा होती।

उन्होंने स्वयं अपने को किसी प्रकार संभाला और ये निर्णय किया कि वे मैया के पास जरूर जाएंगे। वहीं उनका आराम है। वहीं उनका चैन है। वे द्वारकाधीश नहीं बनेंगे।

वापस नंदगांव जाएंगे।

इसी सोच में कुछ क्षणों के लिए उन्होंने अपने सृष्टि नयनों को बंद किया। इस मन की चंचलता में वे फंस गए थे। फिर सोचने लगे कि यहाँ उनको कौन लाया या वो किस प्रकार यहाँ आ पहुंचे ? क्योंकि वे तो मूर्च्छित हो गए थे। इधर उधर आवाजें सुनने का प्रयास किया। किन्तु महीन आवाजों में भी किसी मनुष्य और जन्तु की उन्हें बू तक न मिली।

उन्हें हल्की हवा में बहुत आराम मिल रहा था। निकट ही बहते हुए झरने की ध्वनि को अभी तक उनके चंचल मन ने सुनने नहीं दिया था। वे हर्षित हो कर अपनी जग मुस्कान फैलाने लगे। अपने दर्द को सहते हुए उठे और झरने की ओर चल दिये।

हाथों की कटोरी से उन्होंने कई बार अपने मुख को धोया। उन्हें इस अवस्था में देखकर कौन कहेगा कि ये महान अवतार हैं। वे बिलकुल मनुष्य बन बैठे थे। वे सोच रहे थे। वे भटक गए थे। वे स्मृति मोह में फंस गए थे। लाखों लोगों की मृत्यु को अपने कंधे पर लेकर चल रहे थे। आत्मग्लानि से पूर्ण थे। वे गीता उपदेशक नहीं थे। वे तो मनुष्य थे।

हाथों की अंजुली से ही उन्होंने जलपान किया। उनका मन शांत हुआ। गीले हाथों से ही सिर को कई बार धोया। स्वेद से छलनी हो चुकी त्वचा पर शीतल जल डालने पर संतुष्टि मिली। न जाने इन दोनों में से किसको आराम मिल रहा था। ईश्वर को या मनुष्य को। ईश्वर तो इन सब से ऊपर है।

ईश्वर, वह क्या है, कैसा है, किस स्वाद का है, उसकी भूख क्या है, उसकी जिह्वा क्या है... कोई नहीं जानता। किसने उसकी रचना की अथवा उसने अपनी रचना कैसे की ये भी कहानियों में तो लिखा है पर उन कहानियों में कितनी कल्पना है और कितना यर्थाथ है, किसे पता ? इस व्यक्ति को देखकर ये प्रश्न यकायक उछल पड़े हैं।

यहाँ, इस व्यक्ति पर भगवान के अवतार होने का आरोप है। उसे तो लोग ईश्वर ही मानते हैं। इनके कई नाम हैं। ये ज्ञान की राशि है। पर उनके इस अवतार में एक मनुष्य भी बसता है। शायद इसलिए वह इस दशा में यहाँ उपस्थित हैं। शरीर के कष्ट एक यर्थाथ के समान हैं। उसका दर्द मन को बहका देता है। शरीर में ही आत्मा का बसेरा होता है। शरीर की पीड़ा किसी को भी बुरी तरह त्रस्त कर सकती है।

जल की शीतलता का प्रभाव इस गर्मी में अधिक समय नहीं रह सका। ताप की तीव्रता से वे फिर मूर्च्छित दशा की तरफ जाने लगे। उन्हें अपने सिर में कई चलचित्र चलते हुए दिखाई देने लगे। चित्र में रक्त रंजीत शव दिखे। वह भय युक्त हो गए। इतने अधिक शव। किसी का धड़ है तो मुंडी

नहीं, किसी का हस्त नहीं है, किसी का पैर नहीं। हृदय भेदी क्रंदन मानो ध्वनियों का गुच्छा बनाकर उनसे टकरा रहा था। इस प्रकार के चित्र से वे भागने लगे। उन सब में एक समानता थी कि वे सब एक मामूली मानव थे। इनका युद्ध में संहार हुआ था।

अब वे संभलकर उन चित्रों को ध्यानपूर्वक देखने लगे। सदैव आभामंडित रहने वाला मुख इन चित्रों को देखने के कारण स्वेदयुक्त हो चला। हर शव को यह पीतवस्त्रधारी व्यक्ति सूक्ष्म दृष्टि से देखने लगा। कौन पांडव सैनिक हैं और कौन कौरव सैनिक हैं इसका बिलकुल पता नहीं चला। उनका धर्म वध हुआ था अथवा उनकी अधर्म हत्या की गई थी, इस प्रश्न ने उनके आगे आकर अंधेरा आच्छादित कर दिया।

ये तो निर्जीव शव थे। फिर भी इन चित्रों में वे शव उनसे उठ कर सवाल कर रहे थे।

ये शव व्यर्थ में भगवान के मस्तिष्क को अपने प्रहार से घायल कर रहे थे। उसी चित्र में एक भुने हुए गेंहू के रंग का व्यक्ति अपने दायें हाथ में एक कटा हुआ लहलुहान शीश लेकर उनके आगे आकर खड़ा हो गया। उसने सफेद मैली धोती पहनी थी। रक्त के कुछ धब्बे उसकी धोती पर पड़ गए थे। वह गर्मी से तो व्याकुल नहीं था पर उस शीश को देखकर अपने अश्रुओं को बहा रहा था।

शीश उनके पास लाते हुए बोला, "आप ही माधव हैं?"

उनके उत्तर से पूर्व वह पुनः शीश की ओर देखते हुए बोला, "हाँ। मुझे विदित है कि आप ही माधव हैं। आपके कभी दर्शन नहीं हुए। पर आपकी इतनी ख्याति है कि आपको कौन नहीं पहचान लेगा। आज आप से मिलने का अवसर मिला है। इससे पूर्व आपके कभी दर्शन नहीं हुए थे। पर आज मुझे आपके दर्शन का दिव्य अवसर मिल गया।"

वे अभी तक उसे सुन रहे थे। सुनकर बोले, "मैं माधव नहीं हूँ। देखो! मेरी दशा। मैं तो तुम्हारे समान ही एक साधारण मानुष हूँ।"

व्यक्ति सिर हिलाते हुए बोला, "नहीं कृष्ण, ऐसे न कहिए। आप मोरपंख मुकुट धारी हो। आप पीताम्बर हो। सुदर्शनधारी हो। देखिये मेरे हस्त में ये जो शीश है, ये मेरा छोटा भाई था। इसकी पांडव कौरव युद्ध में मृत्यु हो गई। ये अधर्मी नहीं था। ये तो केवल अपने राजा की आज्ञा का पालन कर रहा था। न करता तो कहाँ जाता। आपकी सेना में शामिल नहीं किया गया। इस छोटे से सैनिक को धर्मराज युधिष्ठिर से मिलने ही नहीं दिया गया। अब इसके परिवार को देखने वाला कोई नहीं। इसे जीवित कर दीजिये प्रभु। जीवित कर दीजिये।"

वे बोले, "मैं कैसे जीवित कर सकता हूँ? और वैसे भी ये विधि का विधान है कि जो जीवित है वह तो मरेगा ही। यही सृष्टि का नियम है।"

वह व्यक्ति बिलख पड़ा। बोला, "क्या मेरा भाई अभिमन्यु और उत्तरा के गर्भ पुत्र परीक्षित से भिन्न है? उसे भी तो आपने जीवित किया था। वह जीवित हुआ, तो मेरा भाई भी क्यों नहीं हो सकता? दया कीजिये प्रभु।" वह ऐसा कह अपने घुटनों के बल गिर कर बैठ गया।

वे चुप हो गए।

माधव ने अपनी आंखे बंद कर ली।... फिर लंबी सांसों और कुछ भी नहीं।

पर... वे चिल्ला उठे। चलते हुए चलचित्र तुरंत अदृश्य हो गए। उनके पैर के तले पर एक विषैला बाण लगा। वे बिलख गए।

इस बाण के चालक ने जब उनके सम्मुख आकर देखा तब वह द्रवित हो उनके चरणों में गिर पड़ा।

अपने इस कृत्य की क्षमा मांगते हुए बोला, "मुझे क्षमा कीजिये प्रभु। अपनी त्रुटिवश आप पर बाण चला बैठा।"

वे व्यथित पीड़ा से कहते हुए बिना देखे ही बोले, "क्षमा मत मांगो। तुमने तो मेरा उद्धार किया है। मुझे जीवन से मुक्ति दिला दी। मैं अपने मनुष्य अंतर मन में चल रहे विचित्र संवादों से त्रस्त था। प्रश्नों का उत्तर भी नहीं दे पा रहा था। जीवन के कृत्यों के फलों को भुगत रहा था। मैं भी एक साधारण व्यक्ति था। मेरी भी एक माँ थी, एक प्रेमिका, सखा थे, भाई थे। मैं द्रवित हूँ। मनुष्य योनि में हूँ। पश्चाताप में हूँ। मैं वैसा ही था जैसे सब थे।..."

परंतु लोगों ने भगवान बना दिया। और यहाँ तक पहुंचा दिया।"

इतना कहने के बाद वे हल्का मुस्कराए और अपने प्राण त्याग दिये।

इतने में सोये हुए मुरली पर किसी के नरम हाथों का स्पर्श पड़ा तो वह जाग उठा। बोला, "माँ आप!"

कितना बजा है?"

माँ ने चादर संभालते हुए कहा, "9... फिर वही सपना देख रहा था?"

मुरली ने हाँ में सिर हिलाया। और छत की तरफ देखकर उठ कर चला गया। माँ उसे जाते देख उसके सपने के बारे में सोचने लगी।



प्रोफेसर देवशंकर नवीन, भारतीय भाषा केन्द्र, भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा 07 दिसम्बर, 2014 को अपने मुख्यालय लखनऊ में वर्ष 2013 के सौहार्द सम्मान से नवाजा गया है। निर्णायक मण्डल की संस्तुति से यह सम्मान उन्हें भव्य समारोह आयोजित कर ख्यातिलब्ध साहित्यकार दूधनाथ सिंह के कर कमलों से दिया गया। इस अवसर पर उन्हें संस्थान के निदेशक डॉ. सुधाकर अदीब एवं कार्यकारी अध्यक्ष श्री उदयप्रताप सिंह के हस्ताक्षर सहित एक ताम्रपत्र, शॉल तथा दो लाख रुपए का चेक प्रदान किया गया। ताम्रपत्र पर उकेरा गया मसौदा इस प्रकार है – fglñh rFkk e\$Fkyh Hkk"kk ds e/; I kfgR; d fofue;] I kđknZ vkš I ello; dks

I Ei qV djus ds fy, ; 'kLoh I kfgR; dkj vkš fglñh dh MkW nš' kđj uohu dks I kđknZ I Eeku I s I eknr djrs gq nks yk[k dh /kujkf'k Hkš/dj mÙkj in\$sk fglñh I \$Fkku Lo; a dks xkšokflor vu\$ko djrk g\$ मैथिली, हिन्दी में प्रो. नवीन की लिखित, अनूदित एवं संकलित-सम्पादित पुस्तकों की संख्या लगभग तीन दर्जन है। इसके अलावा दर्जनों महत्त्वपूर्ण पुस्तकों एवं असंख्य पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कहानी, कविता एवं शोध-आलेख प्रकाशित हुए हैं। अनुवाद अध्ययन एवं तुलनात्मक साहित्य के क्षेत्र में उनका विशेष योगदान रहा है।



vupkn | s | ks Hkk"kk | Ei Uu gksh gA

द' बुलगेट के प्रणेता, बाइबिल के आदिम अनुवादक, अनुवादकों के संरक्षक सन्त जेरोम (सन् 340–420) की समृति में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय अनुवाद दिवस के अवसर पर भारतीय भाषा केन्द्र; भाषा, साहित्य एवं संस्कृति एवं अध्ययन संस्थान, जेएनयू द्वारा 30 सितम्बर, 2014 को 'Hkkjrh; Hkk"kkvkaes vupkn dk ifjn';* विषय पर एक संगोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसमें देश के विशिष्ट विद्वानों ने अपने महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किए। अन्तर्राष्ट्रीय अनुवादक संघ सन्त जेरोम (उनका मूल नाम युसेबियस हाइरोनिमस सॉफ्रॉनियस था) की इस पुण्य तिथि को *vurjkVh; vupkn fnol* घोषित कर सन् 1991 से निरन्तर इस तिथि को अनुवाद के विविध पहलुओं पर आयोजन करते आ रहे हैं।

संगोष्ठी को आरम्भ मं प्रो. देवशंकर नवीन ने अन्तर्राष्ट्रीय अनुवाद दिवस की पृष्ठभूमि से श्रोताओं को अवगत कराते हुए विषय-प्रवर्तन किया, और बहुभाषिकता और बहुसांस्कृतिकता के मद्देनजर वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में व्यवस्थित और उदार संवाद हेतु अनुवाद को बड़ा और अपरिहार्य उद्यम बताया। भारतीय भाषा केन्द्र का यह आयोजन अनुवाद की इसी महत्ता को रेखांकित करता है। उन्होंने इस शुरुआती आयोजन को एक लम्बी यात्रा का श्रीगणेश कहा, और इस अवसर पर हर वर्ष इसे जारी रखने की आश्वस्त दी। इस अवसर के महत् उद्देश्य को रेखांकित करते हुए उन्होंने भारत के प्रारम्भिक अनुवाद चिन्तकों-यास्क, पाणिनी, बुद्धिधर्म, कुमारजीव, गुणादय, सायणाचार्य, क्षेमेन्द्र, दाराशुकोह, पण्डितराज जगन्नाथ आदि के अनुवादकीय अवदानों को श्रद्धा से स्मरण किया। इस क्रम में राजाराममोहन राय, रमेश चन्द्र दत्त, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर, बाबूराव विष्णुराव पराडकर, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द द्वारा किए गए अनुवादों से भारतीय ग्रन्थों के विश्वस्तरीय प्रसार एवं स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान त्रस्त भारतीय नागरिकों के मनोबल देने में अग्रणी भूमिका निभाने वाले मनीषियों के अवदानों को वर्तमान अनुवाद परिदृश्य का पाथे बताया। केन्द्र की अध्यक्ष प्रो. रेखा वी. राजन ने इस नूतन प्रयास की प्रशंसा करते हुए इसे परम्परा के रूप में देखे जाने पर बल दिया, और समागत विशेषज्ञों एवं अनुवाद प्रेमियों का स्वागत किया।

अनुवाद एवं प्रशिक्षण के विशिष्ट विद्वान प्रो. अवधेश कुमार सिंह ने अपने वक्तव्य में अनुवाद की उत्पत्ति के कई मिथकीय एवं शास्त्रीय सन्दर्भों की बात करते हुए मिथकीय पात्र 'नारद' को 'अनुवाद का देवता' माना। एक अनुवादक के रूप में सन्त जेरोम की विशिष्टताओं का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि सन्त ओगस्टाइन के अनुसार, अगर कुछ ऐसा है तो सन्त जेरोम को पता नहीं है, तो शायद समूची मानवता को भी उसके बारे में पता नहीं है। अनुवाद दिवस को संवाद दिवस के रूप में मनाने की इच्छा जाहिर करते हुए उन्होंने कहा कि हमें भार्पा विमर्शों के अनुवाद की बात करनी चाहिए, अनुवाद को मात्र साहित्यानुवाद तक सीमित न होकर अन्य क्षेत्रों से भी जुड़ना चाहिए। उन्होंने अनुवाद की आलोचना की आवश्यकता को भी रेखांकित किया एवं बलपूर्वक कहा कि अनुवाद की स्वस्थ आलोचना परम्परा शीघ्रातिशीघ्र प्रारम्भ होना चाहिए।

प्रो. रामबक्ष ने कई विडम्बनाओं की चर्चा करते हुए कहा कि अनुवाद सम्बन्धी हवाई महल बनाने के बजाए इस क्षेत्र में ठोस कार्य करने की आवश्यकता है। अनुवाद की श्रेष्ठता और प्रमाणिकता पर बल देते हुए उन्होंने स्थापना दी कि खराब अनुवाद देश की गति रोक देता है, इसलिए अनुवाद हो, तो बेहतर हो, वर्ना न हो। उन्होंने स्थापना दी कि खराब अनुवाद देश की गति रोक देता है, इसलिए अनुवाद हो, तो बेहतर हो, वर्ना न हो। उन्होंने कहा कि जिस तरह हर किसी को जीवन में एक-दो पेड़ लगाने की सलाह दी जाती है, उसी तरह कम से कम एक पुस्तक का अनुवाद हर शिक्षित व्यक्ति का दायित्व होना चाहिए। अनुवाद के सन्दर्भ में एक खतरनाथ बिन्दु की ओर इशारा करते हुए उन्होंने कहा कि अनुवाद उपलब्ध न होने की वजह से कुछ लोग जिस तरह भाषाएँ सीखते थे, कहीं ऐसा न हो कि आनेवाले समय में लोगों की यह इच्छा समाप्त होती जाए, और धीरे-धीरे भाषा-ज्ञान का लोप होने लगे। वर्तमान अनुवाद चिन्तकों को उन्होंने इस चिन्ता में शामिल होने का न्यौता दिया।

भारतीय अनुवाद चिन्तन के विशिष्ट विद्वान प्रो. हरीश त्रिवेदी ने गम्भीर वार्ता के दौरान प्रेमचन्द द्वारा अनूदित और उनके अनूदित ग्रन्थों की विस्तार से चर्चा की। उन्होंने यू

आर. अनन्तमूर्ति की प्रसिद्ध कृति 'संस्कार' के हिन्दी अनुवाद की कुछ प्रारम्भिक पंक्तियों को उद्धृत कर उसकी विवेचना की। भारतीय परिदृश्य में अनुवाद विमर्श पर केन्द्रित होते हुए प्रो. त्रिवेदी ने अनुवाद को हमेशा से उपेक्षित माना। उन्होंने अनुवाद के जरिए बौद्ध साहित्य एवं अन्य प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के बड़े पैमाने पर प्रचार-प्रसार की चर्चा तो की, पर साथ ही अनुवाद के प्रति, यहाँ तक कि अपने ही प्राचीन ग्रन्थों के मूल पाठ के प्रति भारतीयों की उदासीनता को क्षोभ व्यक्त किया। कुमारजीव द्वारा किए गए चीनी अनुवाद के विषय में एक चीनी विद्वान के साथ अपने वार्तालाप का उल्लेख करते हुए बताया कि जिन ग्रन्थों का मूल उपलब्ध न हो, उनके अनुवाद की स्तरीयता की परख कैसे सम्भव हो सकता है। इस क्रम में उन्होंने अश्वघोष की प्रसिद्ध कृति *caṃ piṃr* का उल्लेख करते हुए उस विडम्बना का उल्लेख किया जिसमें आज हम आधी-अधूरी मौलिकता के साथ अपनी ही कृति को मौलिक मानने को मजबूर हैं। अपने वक्तव्य में उन्होंने प्रमुखता से उल्लेख किया कि किस तरह चीनी बौद्ध विद्वानों ने भारत आकर यहाँ के बौद्ध वाङ्मय का चीनी में अनुवाद किया, जबकि भारतीय विद्वान इस दिशा में आत्ममुग्ध बने रहे, चीनी, या अन्य विदेशी वाङ्मय से भारतीय भाषाओं में अनुवाद के

प्रति उदासीन रहे। प्रो. त्रिवेदी ने कहा कि अनुवाद के प्रति उदासीनता की यह प्रवृत्ति भारत में आज भी दृष्टिगोचर होती है, जबकि तथ्य है कि अनुवाद से स्रोत भाषा सम्पन्न होती है। आज भी भारत जैसे बहुभाषी देश में अनुवाद को दायम दर्जे का माना जाता है। अनुवाद को भारतीय समाज के उत्थान एवं विकास हेतु अत्यन्त आवश्यक बताकर उन्होंने सभी पढ़े-लिखे लोगों से कोई एक अनुवाद अवश्य करने की अपील की।

अध्यक्षीय वक्तव्य में भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान के डीन एवं अरबी भाषा एवं संस्कृति के प्रख्यात विद्वान प्रो. असलम इस्लाही ने इस आयोजन की प्रशंसा की और अपने सह-वक्ताओं की धारणाओं से सहमति प्रकट करते हुए कहा कि अनुवाद आज के समय की जरूरत है; इसमें बड़ी निष्ठा और समर्पण की जरूरत है। संगोष्ठी का संचालन प्रो. देवशंकर नवीन ने किया एवं अपने इस नूतन प्रयास के लिए ढेर सारी सराहना बटोरी।

विश्वविद्यालय के विभिन्न केन्द्रों से आए छात्र-छात्राओं एवं अध्यापकों ने अन्तर्राष्ट्रीय अनुवाद दिवस, जैसे इस नए आयोजन को लेकर अत्यन्त उत्साहित एवं भविष्य में भी ऐसे

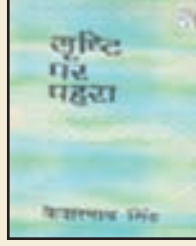


नए प्रकाशन

सृष्टि पर पहरा : केदारनाथ सिंह। हिंदी के वरिष्ठतम कवि केदारनाथ सिंह की कविताओं का नवीनतम काव्य संकलन जिसमें आख्यान और गद्य के विभिन्न रूपों को काव्य में रूपांतरित करने की अद्भुत कला दिखाई पड़ती है।

राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
मूल्य 250/-

ISBN NO. 978-81-267-2590-8



केदारनाथ सिंह की कविता : बिम्ब से आख्यान तक : गोविन्द प्रसाद। केदारनाथ सिंह के कवि कर्म तथा काव्य भाषा को रेखांकित करने वाली पहली आलोचनात्मक कृति।

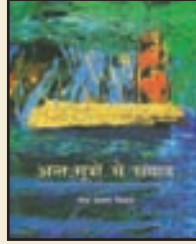
स्वराज प्रकाशन: नई दिल्ली,
मूल्य 250/-

ISBN NO. 978-93-81582-59-6



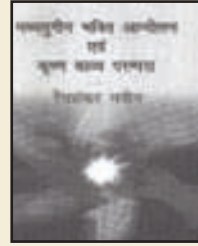
अंतः सूत्रों से संवाद डॉ. गंगा प्रसाद विमल जी द्वारा समय-समय पर लिखित प्रस्तुत निबंधों में पाठक को उस सतत अनुगूँज का आभास होगा जो अन्तः सूत्रों की ही ध्वनियों से विकसित हुई है।

विजया बुक्स प्रकाशन, दिल्ली,
मूल्य 250/-



मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन एवं कृष्ण काव्य परम्परा: देवशंकर नवीन। यह पुस्तक भक्ति आन्दोलन के साथ कृष्ण काव्य परम्परा में समुण भक्ति पर नए सिरे से प्रकाश डालती है और कृष्ण काव्य परम्परा में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए आवश्यक कृति है।

विजया बुक्स, दिल्ली,
मूल्य 195/-

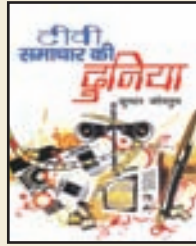


टी वी समाचार की दुनिया: कुमार कौस्तुभ ने पुस्तक में उद्धरण के रूप में 'खबर: एक कहानी का नाम' देकर आत्मानुभव को कौशल से लेखनीबद्ध किया है।

प्रस्तुत पुस्तक में टीवी खबर और उसके परिवेश की समग्रता दिशा-निर्देशों के साथ खुलकर उजागर हुई है।

किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
मूल्य 500/-

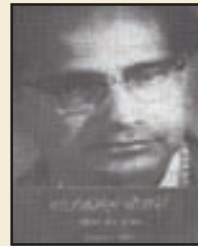
ISBN NO. 978-93-83233-45-8



राजकमल चौधरी जीवन और सृजन देव शंकर नवीन: प्रस्तुत पुस्तक में मैथिली और हिंदी में व्याप्त राजकमल के जीवन और लेखन संबंधी तमाम आवरणों को अपनी प्रखर आलोचकीय प्रतिभा से छिन्न-भिन्न किया है बल्कि राजकमल चौधरी के प्रबल व्यक्तित्व को सामने लाने का साहस भी किया है।

प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली,
मूल्य 185/-

ISBN NO. 978-81-230-1788-4



कविता का पार्श्व : गोविन्द प्रसाद। आलोचना और समीक्षा कर्म के धागों से बुनी यह कृति कई पीढ़ियों के रचना कर्म पर दृष्टिपात करती है।

शिल्पायन, शाहदरा, दिल्ली,
मूल्य 225/-

ISBN NO. 978-93-81611-62-3



बस्ती कभी नहीं बसती : बृजेश कुमार की कविताओं का पहला काव्य संकलन। ईशा ज्ञानदीप, शालीमार बाग, नई दिल्ली,
मूल्य 250/-

ISBN NO. 978-93-82543-03-9



“विश्वविद्यालय की विशेषताएँ होती हैं, मानववाद, सहिष्णुता, तर्कशीलता, विचार का साहस और सत्य की खोज। विश्वविद्यालय का काम है उच्चतर आदर्शों की ओर मनुष्य जाति की सतत यात्रा को संभव करना। राष्ट्र और जनता का हित तभी हो सकता है जब विश्वविद्यालय ठीक से अपने दायित्वों का निर्वाह करें।”

— जवाहरलाल नेहरू

परिसर वीथिका



1. स्वतंत्रता दिवस (15 अगस्त, 2014) के अवसर पर जेएनयू के कुलपति ध्वजारोहण करते हुए।
2. 15 अगस्त, 2014 के अवसर पर सरस्वती वंदना और राष्ट्रगान प्रस्तुत करते हुए प्राथमिक केन्द्रीय विद्यालय के छात्र एवं छात्राएँ जेएनयू में गुणाकर मूल्य स्मृति व्याख्यान।
3. 2 अक्टूबर, 2014 को गाँधी जयन्ती के अवसर पर स्वच्छ भारत अभियान में भाग लेते हुए कुलपति, कुलदेशिक एवं जेएनयू समुदाय के सदस्य
4. स्वतंत्रता दिवस (15 अगस्त, 2014) के अवसर पर जेएनयू के कुलपति व कुलसचिव स्कूली बच्चों को पुरस्कार भेंट करते हुए।
5. 2 अक्टूबर, 2014 को सफाई अभियान के अवसर पर कुलपति जेएनयू समुदाय को सम्बोधित करते हुए।
- 6.

